मनोरंजन पुस्तकमाला—८

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

आदर्श हिंदू

तीसरा भाग

लेखक

मेहता लज्जाराम शर्म्मा

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२८ मूल्य १।)

सूची

आदर्श हिंदू

तीसरा भाग

प्रकरण—४७

विराट् स्वरूप का चित्रपट

श्री जगदीशपुरी मे प्रवेश करके जब तक यात्री मार्कंडेय कुड के विमल जल मे स्नान दानादि नहीं कर लेते, भगवान् के दर्शन करने की उनमे योग्यता नहीं होती। यह वहाँ की चाल है, चाल क्या है पुरी के माहात्म्य मे आज्ञा भी ऐसी ही है। मकान पर सामान रखकर डेरा डंडा जम जाने पर शरीरकृत्य से निवृत्त होकर पंडितजी प्रभृति नंगे पैरों स्नान करने के लिये गए। मार्ग मे इन लोगो ने जो कुछ देखा उसका थोड़ा बहुत वर्णन समय आने पर किया जायगा किंतु एक बात यहाँ प्रकाशित किए बिना इस लेखक की लेखनी एकदम रुक गई। इसमे इस बिचारी को कुछ दोष भी नही दिया जा सकता क्योंकि जब कई महीनो से यह पंडित जी के पीछे पीछे चल रही है, जब इसे एक क्षण के लिये भी उनका वियोग सह्य नहीं है और जब काम पडने पर यदि यह इधर उधर जाती भी है तो लपककर फिर उनके पास पहुँच जाती है

तब पंडित जी के साथ ही यह भी रुकी तो इसका दोष ही क्या? और उन्हे भी इस समय दोषभागी नही कहा जा सकता। उन्हे श्री जगदीश के दर्शन की हजार चटपटी हो, हजार वह चाहते हैं कि जैसे बने तैसे इस कार्य से निवृत्त होकर बाबा के दर्शन करे क्योकि देरी होने से यदि पट बंद हो जायँगे तो फिर चार बजे तक की छुट्टी है। इसलिये उन्होने मार्कंडेय कुंड पर जाने मे चाहे जितनी उतावल की किंतु उनके अंत करण ने उनके चरणो को एकदम रोक दिया। उनका हृदय पहले ही कोमल था फिर वहाँ के सीन ने उसे मोम बना दिया, दयार्द्र कर दिया। वह सजल नेत्रो से, अंत:करण की सच्ची वेदना के साथ, दया उत्पन्न करनेवाले शब्दों मे अपने साथियों से और विशेष कर गौड़बोले से खड़े होकर कहने लगे—

"ओहो! बड़ा भयानक दृश्य है। देखते ही रोमाच हो उठे। हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। आँखें बंद कर लेने को जी चाहता है। देखने की इच्छा नही होती। वह कुछ इस-लिये नही कि इनके घावो मे से पीप बहता देखकर, मक्खियाँ भिनभिनाने से, दुर्गंधि के मारे माथा फटा जाने से घृणा होती हो। कल की किसने देखी है? इनके पूर्व सचित घोर पापो के फल से अपने प्रारब्ध का परिणाम भोगने के लिये यदि ये आज कोढी हो गए तो क्या? किसे खबर है कि कल हमे भी ऐसी यातना भोगनी पड़े। वास्तव मे जो कुछ है, यहाँ का यहाँ है। "यह खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे

उस हाथ ले।" अजी देखो तो साहब, इसकी बीसों अँगु-
लियाँ गल गईं। चलना फिरना भी कठिन है। ओहो! नाक
बिलकुल बैठ गई। हाय हाय! इस नन्हे से बच्चे ने ऐसा
कौन सा पाप किया होगा? अफसोस किसी को कोई खबर
लेनेवाला नहीं। अच्छा इस औरत को तो देखो! शरीर ढाँकने
के लिये, लज्जा निवारण करने को एक कपडा तक नहीं।
पट्टियाँ बाँधने के लिये एक चिर्दी तक नहीं। हाय हाय!
पीप के पनाले बहकर धरती भिगोए डालते हैं, मक्खियाँ काट
काटकर नाको दम कर रही हैं। जब अँगुलियाँ गल गलकर
हाथ पैर बिलकुल लुंज हो गए हैं तब इसके मुँह मे मुट्ठी चने
भी कौन डालता होगा? आबदस्त की भी मुशकिल है। ओहो!
दुर्गंध के मारे चक्कर आने लगे। जी व्याकुल होता है।
गिर पड़ने की इच्छा होती है। बड़ा भीषण दृश्य है। इच्छा
होती है कि यहाँ से भाग चलें परंतु मन नहीं चाहता। देखिए
देखिए! साहब देखिए! ऐसे एक दो, दस बीस नहीं। इनकी
कुल सख्या दो सौ तीन सौ होगी। नूह की किश्ती है। अपने
पापों का परिणाम भोगने के लिये ये इकट्ठे हो गए है। मरकर यदि
यमराज का जेलखाना देखने के अनंतर कोई अपना अनुभव
सुनाने के लिये नहीं आता है तो न सही। यही यमराज का
कारागृह समझो। इससे बढ़कर क्या होगा? वास्तव मे इनका
कष्ट देखा नहीं जाता। यदि मनुष्य मे शक्ति हो तो राजा की
वर्षगाँठ पर जैसे कैदी छोड़े जाते हैं वैसे इन बिचारों का तुरंत

छुटकारा कर दे किंतु यह सामर्थ्य ईश्वर के बिना किसी मे नहीं। खैर ! इन्होने पाप किए हैं और ये दंड भोगते हैं और सो भी भगवान् की ड्योढ़ी पर पडे पड़े भोगते हैं तो किसी न किसी दिन उस दयासागर की इन पर अवश्य दया होगी किंतु जब तक अपने कुकर्मों का दंड भोगने के लिये ये जीते हैं तब तक के लिये पेट तो नहीं मानता। दुःख पाकर मरा भी तो नहीं जाता! क्या भारतवर्ष मे ऐसा कोई भी माई का लाल नहीं जो इनके लिये खाने पहनने और मरहम पट्टी का बंदोबस्त करके इन्हें छाया के स्थान पर नगर से अलग रख सके। साल भर मे यहाॅ लाखो यात्रियो का आगमन होता है, उनमे हजारों ही धनवान् आते हैं परतु कोई इनकी सुध लेनेवाला नहीं। सूर्यो-दय से सूर्यास्त तक यहाॅ. सडक के दोनो किनारों पर कतार बाधे पड़े रहना, यात्रियो के दिए हुए चनों के दाने दाने को इकट्ठा करके पेट भर लेना और चाहे वर्षा हो, चाहे सर्दी हो और चाहे गर्मी हो यहीं, पेड़ों की छाया में निवास। इससे बढकर यातना क्या होगी? घोर कष्ट है। वेदना की परिसीमा है।"

इस तरह कह कहकर आॅसू बहाते बहाते पंडितायिन के इशारे से पंडितजी ने बाजार से पूडियाॅ मँगवाईं और जितने कोढ़ी वहाॅ थे उन्हे खिलाकर तब वह आगे बढ़े। ऐसे केवल पूडियाॅ बाॅटकर ही ये चल दिए हों सो नहीं। दंपती की घृणा उस समय बिलकुल काफूर हो गई। साथियों ने बहुतेरा उन्हे समझाया, रोका, यहाॅ तक कह दिया कि

यह रोग उड़कर लग जाता है किंतु इन्होंने कुछ पर्वाह नहीं की। दोनों के दोनों ने उनमे से जिनकी शक्ति नहीं थी, जो असमर्थ थे अथवा जो अपने हाथ से अपना काम नहीं कर सकते थे उनके पीप से भरे हुए घाव अपने हाथो से धोए। बाजार से नया कपडा मँगाकर उनके पट्टियाँ बाँधी और तब मार्कंडेय कुंड मे जाकर स्नान किया। वहाँ के कार्य से निवृत्त होकर जब इन्होंने श्री जगदीश के मंदिर मे प्रवेश किया तब घडी मे ठीक "टन टन" चार बजे थे।

दर्शन खुलने ही वाले थे। रथयात्रा का उत्सव न होने पर भी, और किसी तरह का व्यवहार न होने पर भी यात्रियों की भीड के मारे, उड़िया लोगों के ठट्ठ के मारे कोहनियाँ छिली जाती थीं, पैर कुचले जाते थे, और पुरी निवासी उड़ियों के शरीरो मे की तेल तथा मछली की गंध के मारे सिर भिन्नाया जाता था। जिनका दिमाग गुलाब, जुही, मोगरा, चमेली के इतरों से सदा बसा रहता हो उनकी तो कथा ही क्या ? उन्हे तो शायद उसी समय चक्कर आकर वमन हो जाय तो कुछ आश्चर्य नही किंतु जो साधारण स्थित के मनुष्य हैं उनका भी जी घबड़ाता था। खैर ! वे लोग अकुलाते हैं तो अकुलाने दीजिए किंतु इस समय दर्शनों की आशा मे सबके सब मग्न हो रहे हैं। राजा रंक का, अमीर गरीब का, भले बुरे का और स्त्री पुरुष का जो भिन्न भाव था वह यहाँ बिलकुल नहीं। यदि ब्राह्मण है तो क्या,

और शूद्र है तो क्या ? भगवान् के लिये सब समान हैं। अब जवनिका उठा दी गई। टेरा खुल गया। दर्शक भगवान् के दर्शनों का आनंद लूटने लगे किंतु जैसे जलाशय के ज्यों ज्यों निकट पहुँचते जाते हैं त्यों ही त्यों तृषा बढ़ती है वैसे ही अब मंदिर मे प्रवेश करके निकट से श्री जगदीश की झाँकी करने की इच्छा बढ़ी। अवश्य ही भीतर जाने के लिये किसी की रोक टोक नहीं किंतु इतनी भीड़ में घुसकर अँधेरे मार्ग से जाना और फिर सही सलामत लौट आना हँसी खेल नहीं। फिर आज सब ही चाहते हैं कि भीड़ के सिल-सिले को छोड़-कर बीच के मार्ग से हम पहले ही भीतर चले जायँ। बस इस तरह "हम पहले !" की होड़ाहोड़ी है। पंडो के सिपाहियो का हाथ गर्म हो रहा है, दर्शक उनकी घुड़कियाँ खाते हैं, वेत की मार खाते हैं, किंतु फिर भी कुछ दे दिलाकर औरो से पहले भीतर पहुँचते हैं। खैर! इतना ही वहुत है। जब हिंदुओं के सब ही मंदिरो मे सब ही तीर्थों मे इन वातो का अनुभव होता है, जब इस उपन्यास मे पहले भी कई बार इस विषय में लिखा जा चुका है तब पिसे को पीसने से क्या लाभ ?

अस्तु, पंडित पार्टी भी किसी न किसी प्रकार से मंदिर मे जा पहुँची। वहाँ जाकर भगवान् जगदीश के समक्ष, उन परमात्मा के समक्ष जो सृष्टि उत्पन्न करने के समय ब्रह्मा, पालन करने मे विष्णु और संहार करने के लिये शिव स्वरूप हैं दोनों हाथ जोड़कर, उनके अंग प्रत्यंग को निरखकर

उनके चरणों मे अपने चर्मचक्षुओ के साथ साथ हृदय के नेत्रों को गड़ाते हुए पंडित प्रियानाथ जी आदि गाने लगे—

"देश सोरठ—हरि हौं वडी बेर को ठाढो ॥ टेक ॥

जैसे और पतित तुम तारे तिन हीं मे लिख काढो ॥

जुग जुग बिरद यही चल आयो टेर करत हों ताते ।

मरियत लाज पंच पतितन मे हौं घट कहो कहाँ ते ? ॥

कै अब हार मान कर बैठो कै कर बिरद सही ।

सूर पतित जो झूठ कहत है देखो खोल बही ॥ १ ॥

धनाश्री—नाथ मोहि अब की बेर उबारो ॥ टेक ॥

तुम नाथन के नाथ स्वामी दाता नाम तिहारो ।

कर्महीन जन्म को अधो मोते कौन नकारो ॥

तीन लोक के तुम प्रतिपालक मैं तो दास तिहारो ।

तारी जात कुजात प्रभूजी मोपर किरपा धारो ॥

पतितन मे एक नायक कहिए नीचन मे सरदारो ।

कोटि पापी इक पासँग मेरे अजामील को न विचारो ॥

नाठ्यो धर्म नाम सुन मेरो नरक दियो हठ तारो ।

मोको ठौर नही अब कोऊ अपनो बिरद सँभारो ॥

क्षुद्र पतित तुम तारे रमापति अब न करो जिय गारो ।

सूरदास साँचो तव मानै जो होय मम निस्तारो ॥ २ ॥

शरण आए की लाज उर धरिए ॥ टेक ॥

सध्यो नही धर्म शील शुचि तप व्रत कछू कहा मुख ले बिनै तुम्हे करिए ॥

कछु चाहौं कहौं सोचि मन में रहौं कर्म अपने जानि त्रास आवै।
यहै निज सार अधार मेरे अहै पतित पावन बिरद बेद गावै ॥
जन्म तें एकटक लागि आशा रही विषय विष खात नहि
तृप्ति मानी।
जो छिया छरद करि सकल सतन तजी तासु मति मूढ रस
प्रोति ठानी ॥
पाप मारग जिते तेव कीन्हें तिते बच्यो नहिं कोई जहँ
सुरति मेरी।
सूर अवगुण भरयो आइ द्वारे परयो तकी गोपाल अब
शरण तेरी ॥ ३ ॥

सारंग—तुम हरि साँकरे के साथी ॥ टेक ॥
सुनत पुकार परम आतुर ह्वै दौरि छुड़ायो हाथी ॥
गर्भ परीच्छित रच्छा कीनी बेद उपनिषद साखी।
बसन बढ़ाय द्रुपदतनया के सभा माँझ पत राखी ॥
राज रवनि गाई व्याकुल ह्वै दै दै सुत को धीरक।
मागध हति राजा सब छोरे ऐसे प्रभु पर पीरक ॥
कपट स्वरूप धरयो जब कोकिल नृप प्रतीति करि मानी।
कठिन परी तबहीं तुम प्रकटे रिपु हति सब सुखदानी ॥
ऐसे कहौं कहाँ लौं गुण गण लिखत अंत नहि पइए।
कृपासिंधु उनही के लेखे मम लज्जा निर्बहिए ॥
सूर तुम्हारी ऐसी निबही संकट के तुम साथी।
ज्यों जानो त्यों करो दीन की बात सकल तुम हाथी ॥ ४ ॥

धनाश्री—आजु हौं एक एक करि टरिहौं ॥ टेक ॥

कै हमही कै तुमही माधव अपन भरोसे लरिहौं।
हौं तो पतित अहौं पीढ़िन को पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अबहौं उघर नचन चाहत हौं तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं॥
कत अपनी परतीत नसावत मैं पायो हरि हीरा।
सूर पतित तबही लै उठिहैं जब हँसि देहो बीरा ॥५॥

इस बार सूरदास जी के पद पंडित, पंडितायिन, गौड़-बोले तीनों ने मिलकर गाए। साथ मे राग भरने के लिये बूढा, बुढ़िया भी मिल गए और जब ताल सुर अच्छा जम गया तो एकदम दर्शनियों मे सन्नाटा छा गया। सब की आँखे हरि चरणो मे और कान इनके गान मे। यो गायन समाप्त होने पर "धन्य। धन्य!" और "शाबाश! शाबाश!" की आवाज और कभी "खूब अमृत बरसाया!" का शव्द भीड़ में से बारंबार उठकर मंदिर मे गूँजता हुआ बाहर तक प्रतिध्वनित होने लगा किंतु झेपकर सिर झुका लेने के सिवाय पंडित जी ने कुछ उत्तर न दिया। वह फिर समय पाकर भगवान् जगत् के नाथ की यो स्तुति करने लगे—

"हे अशरण शरण, इससे बढ़कर और क्या कहूँ? जो कुछ मैंने अभी निवेदन किया है वह महात्मा सूरदास जी से उधार लेकर। उनकी सी योग्यता मुझ अकिंचन मे कहाँ है जो मैं अपनी विनय आपको सुना सकूँ? भला उनका तो आपसे कुछ दावा भी था। दावा था तबही वह आपके

द्वार पर अड़कर बैठ गए। जो पद शिव सनकादिकों को भी दुर्लभ है वही उन्होंने पा लिया। और पाया सो भी चिरकालीन। खैर! उनका भी दावा था और गोस्वामी तुलसीदास जी का भी दावा था। उनका दावा था इसी लिये उन्हे बाँह पकड़कर कुएँ में गिरते गिरते बचाया, कुएँ मे से क्या बचाया भवकूप मे से बचा लिया और तुलसीदास जी का दावा था इसी लिये उनकी विनय पर मुरली और लकुटी त्यागकर धनुप बाण धारण किया किंतु मुझ जैसा पामर किस बिरते पर दावा करे। सूरदास जी ने जो कुछ कहा वह केवल विनय के लिये, अपनी नम्रता दिखाने को किंतु मैं तो सचमुच वैसा पापी हूँ, घोर पापी। मुझे उबारो तब आपकी दीन-दयालुता साँची है। हे नाथ! रक्षा करो! इस दीन, हीन, मलिन की रक्षा करो। हे तारणतरण! मुझे उबारो।''

इस तरह कहते कहते पंडित जी फिर ध्यानावस्थित फिर निश्चेष्ट, नि:स्तब्ध। उनका देहाभिमान जाता रहा। आँखों मे से अश्रुधारा बहने के अतिरिक्त उन्हे अभी कुछ खबर नहीं कि उनके शरीर की इस समय स्थिति क्या हो रही है। इतने में दर्शकों मे से न मालूम किसने, केवल पंडित जी को चिताने के लिये अथवा स्वभाव से ही कुछ गुनगुनाया। उसने क्या गाया, सो किसी ने सुना नहीं किंतु "हैं किस गोरी का ध्यान? कहाँ हैं भूपकिशोर?" कहकर पंडित जी मानो इधर उधर किसी खोई हुई वस्तु को ढूँढ़ने लगे। पंडितायिन उनकी

अर्द्धांगिनी होने पर भी इसका एक बार कुछ मतलब न समझ सकीं। हाँ उसने टटोल टटालकर अंत मे मतलब निकाला कि किसी ने भीड़ मे से "बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू, भूप-किशोर देखि किन लेहू" यह चौपाई गाई है।

अस्तु। अब पंडित जी फिर बोले—"इस स्वरूप मे आज न भूपकिशोर हैं और न कृष्ण बलदाऊ हैं। भगवान् के दस अवतारों मे से, चौबीस अवतारो मे से एक का भी स्वरूप इससे नहीं मिलता। भारतवर्ष मे हजारो क्या, लाखों मंदिर हैं। उनमे जो भगवान् की प्रतिमाएँ हैं वे अवतारो मे से किसी न किसी भाव की प्रतिमूर्तियाँ हैं किंतु इसमे कौन सा भाव कहा जाय? पुराणों मे इसकी कथा चाहे जिस तरह पर हो, जो कुछ होगी "जगन्नाथ माहात्म्य" सुनने से विदित हो जायगी किंतु इस समय तो मेरे अंत:करण मे अचानक एक ही भाव का उदय हो रहा है। मानो बाबा मेरी ओर मुसकुरा कर गवाही दे रहे हैं कि मेरी यह कल्पना केवल कवि कल्पना नहीं है। हाँ! तो मेरी समझ मे जो आया वह यही है कि गीता का उपदेश देकर उसे अर्जुन के अंत:करण पर अच्छी तरह जमाने के लिये भगवान् ने विराट् स्वरूप के दर्शन कराए, जैसे माता कौशल्या और माता यशोदा का मोह छुडाने के लिये भगवान् ने अपने मुख मे, उदर मे त्रैलोक्य को दिखला दिया उसी तरह यह मूर्ति विराट् स्वरूप का, त्रिलोकी का चित्रपट है। यदि भगवान् की कृपा से

अर्जुन की तरह हमे भी दिव्य दृष्टि मिल जाय तो हम देख सकते हैं कि इसमे राम हैं, कृष्ण हैं, ससार है और सब कुछ है। कुछ कुछ झलक मुझे भी ऐसी ही प्रतीत होती है किंतु हे जगदीश, आज आपकी वह मृदु मुसक्यान कहाँ गई? क्या आप सचमुच हम पामरों से रूठ गए हैं? बेशक। आप रूठे ही से मालूम होते हैं। अपनी संतान की अनीति देखकर माता जैसे रूठने का भाव दिखलाती है किंतु हृदय से नहीं, इसी तरह आप भी रूठे हैं। पापों के सागर मे डूबे हुए हम लोगो के नेत्र ही नहीं। आँखों की जगह केवल गोल गोल गढ़े हैं। यदि दिव्य चक्षु, नहो केवल हृदय चक्षु भी हम रखते हों और वे पाप विकारो से रहित हों तब हम आपकी वास्तविक छवि का अवलोकन कर सकते हैं। जब तक प्रारब्ध के फल से दिव्य चक्षु न मिले, हिए की आँखे न खुल जाँय तब तक चर्म चक्षु ही गनीमत हैं। हमारे कितने ही भाइयों के तो यहाँ आकर वे भी बंद हो जाते हैं। मंदिर के भीतर जाने पर भी बाबा के दर्शन नहीं होते।"

"हाँ हाँ! ऐसा ही कहते हैं? कहते क्या हैं? आँखों से देख लो। खैर परंतु महाराज मूर्तियाँ तीनो ही विलक्षण हैं, अप्रतिम हैं। और और प्रतिमाओं मे उनकी मधुरता, उनकी मृदु मुसक्यान, उनका अलौकिक शृंगार देखकर अंतः-करण द्रवित होता है इसलिये लोग कहते हैं कि उनका सौंदर्य इसका कारण है किंतु जब यहाँ सुंदरता का नाम नहीं, कुरू-

पता, राम राम । भगवान् के लिये ऐसा कहकर पाप-पंक में निमग्न कौन हो ? फिर भी दर्शन करके मन पर एक असाधारण प्रभाव पड़ता है। वह वाणी के अगोचर है। भयानक मूर्ति को देखकर आदमी डरा करता है। डर के मारे आँखें बंद कर लेता है किंतु इन पर से आँखे हटती ही नहीं। इन चरणों को छोड़ने को जी नहीं चाहता। परमेश्वर ऐसा ही करे। यदि ऐसा हो तो परम सौभाग्य समझो। इस जन्म में तो हमने ऐसा पुण्य ही क्या किया है जो ऐसा हो। ईश्वर की इच्छा।"

"वास्तव मे यथार्थ है। परंतु क्यों महाराज, आप समझे ? ये तीनो विग्रह किन किन के हैं ? एक जगन्नाथ, दूसरे बलभद्र और मध्य मे सुभद्रा। सुभद्रा कौन ? क्या श्रीकृष्णचंद्र की भगिनी अर्जुन की कुलवधू ? नहीं ! ऐसा नहीं हो सकता ! वह एक सुगृहिणी होकर पति चरणो को क्यो छोड़ती ? यह सुभद्रा नहीं भद्रा है। लोगों ने भ्रम से कहना आरंभ कर दिया है। परपरा से चाहे ऐसा ही कहते चले आवे किंतु यह श्रीकृष्णचंद्र की आठ पटरानियों मे से एक हैं। पटरानियों मे से हैं तब ही भगवान् के वामांग मे स्थान लिया है। अच्छा कोई हों किंतु मेरी समझ मे भगवान् जगदीश ब्रह्म, भगवान् बलभद्र जीव और भगवती सु-भद्रा माया हैं।"

इस तरह की बाते करते करते पंडित जी और गौड़बोले भीड से बचाने के लिये पंडितायिन को बीच मे लिए हुए बूढा, बुढ़िया और भोला, गोपीवल्लभ को साथ लेकर भग-

वान् की प्रदक्षिणा करते हुए मंदिर से बाहर निकले। परंतु ओहो! मंदिर का अंधकार? परिक्रमा की सकरी गली की कसाससी? कुछ पूछो ही मत। जहाँ भर दुपहरी मे दीपक के विना काम ही न चले। भगवान् के चरणो मे पहुँचने के अनंतर मानो यह अंतिम कसौटी है अथवा सोने के तार को अधिक लंबा और अधिक बारीक बनाने के लिये सुनार की जंती की तरह प्रेम की जंती है।

कुछ भी हो, अब पंडित पार्टी भूख के मारे व्याकुल है। जरा उसे डेरे पर पहुँचकर कुछ विश्राम ले लेने दीजिए। प्रसाद पा लेने दीजिए। गोपीवल्लभ वास्तव मे भूख के मारे रो रहा है, अपनी आँखो से मोती से आँसू गिरा रहा है। छोटा बड़ा कोई हो चेहरे तो सब ही के खिसियाने से हो रहे हैं। पंडित जी का भक्ति से पेट भर गया तो क्या हुआ और प्रियंवदा का चाँद सा मुखड़ा चाहे अपने भावों को छिपाने का प्रयत्न ही क्यो न करे किंतु उसके मुख कमल की कुम्हिलाहट दौड़ दौड़कर जतला रही है कि पति परमात्मा के महाप्रसाद पा लेने के अनतर उनकी जूंठन मुझे भी मिले। अस्तु! पार्टी जब मकान पर पहुँच गई तब थोड़ी देर सुस्ताकर पंडित जी और गोडबोले ने स्नान किया। पीतांबर पहने और यो तैयार होकर अपने खर्च के योग्य मंदिर से जाकर प्रसाद ले आए और तब सबने भक्तिपूर्वक, तृप्तिपूर्वक भोजन किया।

प्रकरण—४८

श्री जगदीश का प्रसाद और अश्लील मूर्तियाँ

"परंतु क्यों जी प्रसाद की तो यहाँ बहुत ही अवज्ञा है। राम राम! शिव शिव! ऐसी अवज्ञा? भगवान् जगदीश का जो महाप्रसाद देवताओं को भी दुर्लभ है, जिसके लिये बड़े बड़े ऋषि मुनि तरसते हैं, जिसका एक कनका भी भवसागर पार उतरने के लिये सेतु है और जिसका माहात्म्य वर्णन करने, जिसका गुण गान करने मे अपने हस्तारविंद पर रखकर महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने एकादशी के दिन दिन रात बिता दिए थे उसकी इतनी अवज्ञा? उसका इतना अपमान! उसका इतना अनाचार! घोर अनाचार है। बस हद हो गई!"

"हाँ सत्य है। यथार्थ है। वास्तव मे केवल याद करने ही से रोमांच होते हैं। ज उसकी महिमा मूर्तिमती होकर दर्शन देती है तब आनंद से और जब उसका अनादर सामने आता है तब दुःख से हृदय दहल उठता है, रोमांच हो उठते हैं। हम लोग यदि मदिर मे जाकर ही ले आए, ऐसे लाकर ही हमने अपना मन समझा लिया तो क्या हुआ? यदि मदिर मे जाओ तो मदिर मे और बाहर फिरो तो बाहर, जहाँ जाओ वहाँ महाप्रसाद की गंध, जहाँ देखो वहाँ महाप्रसाद बिखरा हुआ पैरो से रौंदा जा रहा है। उसे तैयार करनेवाले

पाचक ये ही मछली खानेवाले ब्राह्मण, उन्हे लाकर यात्रियों के पास पहुँचानेवाले शूद्र। वास्तव मे बाबा के निकट ब्राह्मण और शूद्र एक हैं, समान हैं, किंतु इसका क्या यह मतलब है कि मार्ग मे लपक लपककर उसमे से खाते जाते हैं, खाते खाते जो कुछ बचता है उसे उसी मे डाल दिया जाता है, जो कुछ बचा बचाया हो उसे बटोरकर दूसरे यात्रियों के पास पहुँचा दिया जाता है। घोर अनर्थ है। असह्य वेदना है। न शास्त्र-विहित आचार का कहीं पता है और न महाप्रसाद जैसी आदरणीय वस्तु का आदर।"

"बेशक, आपका कहना ठीक है। बस एक ही बार से मन भर गया। बहुत हुआ। गंगा नहाए। अब अपने हाथ से बनाना खाना और बाबा के दर्शन करना।"

इस प्रकार का मनसूबा करके, विचार स्थिर कर लेने पर भी चित्त को चैन नहीं हुआ तब अपने मन की भ्रांति निवृत्त करने के लिये—"इधर जाओ तो धाड और उधर गिरो तो कराड़" को याद करके पछताते हुए दो यात्री पंडितजी के पास आए। उन्होने आकर, दोनो के मन के भाव उनको समझाने के अनंतर हाथ जोड़कर, निंदा के लिये नहीं किंतु भक्तिपूर्वक पूछा—

आज ही के दिन मे आपकी चर्या देखकर हम लोगो को निश्चय हो गया है कि आप परमेश्वर के भक्त हैं, पंडित हैं और लोकाचार को भली भाँति जाननेवाले हैं। महाराज, वल्लभसंप्रदाय के मंदिरों मे, मंदिर के मुखिया भीतरियों को प्रसाद

बेचते देखकर ही हमारा जी जलता था। भगवान् का महाप्रसाद जैसा सुर-दुर्लभ पदार्थ, जिसके मूल्य के आगे त्रिलोकी का राज्य भी तुच्छ है वह दूकानें लगाकर बेचा जावे। बड़े अनर्थ की बात है किंतु यहाँ आकर हम उसे भी गनीमत समझने लगे। यहाँ तो अवज्ञा की, अनाचार की हद हो गई।

"हाँ! आप लोग ठीक कहते हैं। मन मे ऐसे ही भाव उत्पन्न होते हैं। "श्रीजगदीश-माहात्म्य" मैंने सुना। यहाँ के पंडितो से मेरा वादविवाद भी हुआ। शास्त्रो के मत से यह अवश्य पाया जाता है कि भगवान् के महाप्रसाद का अनादर न करना चाहिए। उसमे छुआछूत का विचार नहीं। घृणा उत्पन्न होना भी पाप है किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसकी पवित्रता भी खो दे, उसकी महिमा का सर्वनाश हो जाय और वह पैरो से कुचला जाय।"

"हाँ महाराज! यही हमारा कथन है। परंतु यह तो बतलाइए कि किस प्रकार का प्रबंध होने से ये दोष, ये कलंक मिट सकते हैं? और हमे कर्तव्य क्या है?"

"कलंक मेटनेवाला केवल जगदीश है। वह चाहे तो एक क्षणभर मे लोगो की गति मति सुधर सकती है। जाति पाँति के भेद का, छुआछूत के भिन्न भाव का अभाव भी यहाँ इस कारण से है और केवल उनके लिये है जो संसार के यावत् विकारों से रहित हैं, जिन्होने अपनी इंद्रियों को जीत-कर, दुनिया के यावत् नातेदारों से नाता तोड़कर अपने अंतः-

करण को ईश चरणों मे चिपटा दिया है। ऐसा करनेवाले शूद्र क्या अतिशूद्र तक परमपद प्राप्त करते हैं। शवरी, वाल्मीकि, रैदास और धना कसाई आदि अनेक भक्त इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ऐसे भगवदीय जनों से स्पर्शास्पर्श की, जातिपाँति की घृणा न हो। यही यहाँ के महाप्रसाद का माहात्म्य है। ऐसे भक्त वास्तव मे हमारे वंदनीय हैं। ये शूद्र, अतिशूद्र होने पर भी हमारे पूजनीय हैं। हम उनकी यदि जूठन भी खावे तो हमारा सौभाग्य किंतु भक्ति का हमारे हृदय मे लेश नही, भगवान् के दर्शन करते समय भी उनके चरणो मे लौ लगाने के वदले या तो हम रुपयों की थैली को याद करते हैं अथवा पर स्त्री के चरणो की महावर। मंदिर मे जाकर भगवान् की मूर्ति को निरखने के बदले जब युवतियो के हावभाव पर हमारी नजर पहुँचकर उनका सतीत्व बिगाड़ने की ओर हमारा मन दौड़ा जाता है तब कदापि हम इस बात के अधिकारी नही कि हमारा स्पर्श किया हुआ भोजन करके कोई महात्मा हमारे पापो के कीटाणुओं (जर्मों) का अपने मन मे प्रवेश करे। इस कारण यदि उपाय हो सके तो ऐसा ही होना चाहिए जिससे महाप्रसाद की महिमा भी ज्यो की त्यों रहे, नहीं वर्द्धमान हो और हमारा आचार भी रक्षित रहे।"

"हाँ महाराज! यही हम भी चाहते हैं, परंतु इसका प्रकार क्या है?"

"मेरी लघुमति के अनुसार होना इस तरह चाहिए कि

मंदिर में प्रसाद बनानेवाले जो ब्राह्मण पाचक हैं वे चाहे उड़िया ब्राह्मण ही हों तो कुछ हानि नहीं। वे भी पंच गौड़ों में से उत्कल जाति के हैं। यहाँ गौड़ द्राविड़ों का भेद रखने की आवश्यकता नहीं।"

"परंतु महाराज, तब क्या नागर, गुजराती, गौड़, कनौजिये सब एक हो जाँय?"

"शास्त्र की मर्यादा से ब्राह्मण ब्राह्मण सब एक हैं। कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है कि एक प्रकार का ब्राह्मण दूसरे का छुआ न खाय। बात यह है कि आचार, देश-भेद और विचार-भेद से भिन्न भिन्न हो जाया करते हैं। जहाँ सर्दी अधिक पड़ती है वहाँ एक बार भी स्नान कठिन है और जहाँ गर्मी अधिक हो वहाँ तीन बार भी थोड़ा है। फिर "घृतपक्वं पयःपक्वं पक्वं केवल वह्निना"—ऐसे वाक्यों का अर्थ भी लोगों ने अलग अलग लगा दिया है। कोई पूरी को केवल घृतपक्वं मानकर उसका शूद्र से छू जाना भी बुरा नहीं समझते और कोई उसमें जल का अंश मानकर उसे कच्ची समझते हैं। इन कारणों से जहाँ आचार-भेद है वहाँ खान-पान में भी भेद रहेगा। किंतु इस झगड़े को अभी जाने दीजिए। विषयांतर हो जाने से असली बात हाथ से निकली जाती है।"

"अच्छा तो फर्माइए न कि क्या इन मछली खानेवाले उड़ियों का बनाया महाप्रसाद ग्राह्य है?"

"मैं मांस भक्षण को बहुत बुरा समझता हूँ। चाहे कैसा

भी विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मण हो किंतु मांस मछली खाने-वाले से मुझे स्वभाव से घृणा है किंतु मैंने सुना है कि जो महाप्रसाद बनाने का काम करनेवाले हैं उन्हे तीन दिन पहले से मछली का त्याग करना पडता है। मेरी समझ मे पाचकों का वेतन बढ़ाकर उनके कुटुंब मे धर्मशिक्षा का प्रचार करके ऐसे पाचको को नियत करना चाहिए जो इस कुकर्म से सदा ही बचे रहना अपना कर्तव्य समझे।"

"हाँ ठीक है, परतु फिर ?"

"जैसे पाचक सदाचारी हो वैसे ही भगवान् के भोग लगाने-वाले भी हो। उनका स्पर्श किया हुआ नैवेद्य हम लोग स्नान करके, अपने अपने आचार के अनुसार पवित्र होकर यदि भोजन करे तो इसमे प्रसाद का आदर बढ़े और आचार की रक्षा भी हो।"

"तब इस तरह से हम उस महाप्रसाद को अपने घर ले आवे तो इसमे कुछ हानि नही ? रस्ते चला हुआ ?"

"नहीं। कुछ हानि नहीं। हम अपने आचार के अनु-सार लाकर पा सकते हैं! यह हमारे हाथ मे है कि मार्ग में किसी से स्पर्श न होने दे।"

"और हमारे खाने के अनंतर पत्तल मे उच्छिष्ट रह जाय तो ?"

"हम उच्छिष्ट रहने ही क्यों दें ? और रह जाय तो उसके लिये अंत्यज हैं! हमे फेक न देना चाहिए।"

"अच्छा महाराज! ऐसा ही करेंगे। परंतु एक बात

श्रौर भी कह दीजिए। क्या इस महाप्रसाद को हम स्वदेश भी ले जा सकते हैं?"

"नहीं! माहात्म्य इस पुरी का है, केवल बाबा के चरणों मे है। उसके चरणारविंदों से जितने दूर उतने ही दूर।"

"अच्छा महाराज, आपंने हमारा संदेह मिटाकर बड़ा उपकार किया। आपके दर्शनों से आज हम कृतकृत्य हुए।" कहते हुए जब वे दोनो यात्री उनके पास से उठकर अपनी कोठरी मे अपने अपने विस्तरों पर जा सोए तब प्रियंवदा ने अपने प्राणनाथ के चरण चापने के लिये, उनकी दिन भर की थकान दूर करके उन्हे सुख से सुलाने के लिये अपने कोमल कोमल हाथ बढ़ाए। इस पर पंडित जी बोले—"हैं हैं। यह क्या करती है? आज तू भी बहुत थक गई है। सो जा! सो जा। एक दिन न सही। क्या यह भी कोई नित्य नियम है। देवपूजा है? यदि पुरी मे आकर न किया तो न सही।"

"हाँ मेरे लिये तो नित्य नियम ही है। वास्तव मे देवपूजा ही है। न किया सो न कैसे किया?" कहकर प्रियंवदा पति के चरण चापने लगी। "क्यो जी नींद तो नहीं आती है? आपकी निद्रा मे तो विघ्न नही पड़ेगा? आप आज बहुत थक गए हैं यदि नींद आती हो तो वैसा कह दो।" कहकर उसने कई सवाल पर सवाल कर डाले। उन्होंने उत्तर दिया—

"नहीं। अभी नही आती। नेत्रों मे निद्रा का लेश भी नही है। आज शायद कुछ देर से आवे और अभी अति काल भी नहो हुआ।"

"अतिकाल नहीं हुआ तो एक बात पूछना चाहती हूँ। मेरे मन में बड़ा संदेह है। जब से मैंने देखा है मैं लाज के मारे मरी जाती हूँ। भगवान के मंदिर में ऐसा अनर्थ? ऐसी निर्लज्जता? ऐसी अश्लीलता? भला आपने गङ्गा-प्रसाद की उन लोगों को व्याख्या सुनाकर उनके विषय में तो मेरा संदेह निर्मूल कर दिया। यह सत्य भी है कि यदि कदा-चारी के लिए जाति पाँति का भेद नहीं है तो न सही किन्तु सदाचारी कदाचारी क्यों एक हो जायँ?"

"भगवान के दर्शन करने के अनन्तर जब कदाचारी भी सदाचारी हो जाता है तब कदाचारी कौन रहा? और कदा-चारी को भगवान् जगदीश दर्शन भी तो नहीं देते।"

"परंतु हम इस बात का निश्चय भी तो नहीं कर सकते कि कौन कदाचारी है।"

"इसीलिये मैंने उन यात्रियों को ऐसी व्यवस्था दी है। इसीलिये हमारे लिये ऐसा कर्तव्य है।"

"हाँ परंतु असली बात को न छोड़िए! मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।"

"तेरे प्रश्न का उत्तर बड़ा गहन है। ऐसा संदेह केवल तुझे ही हुआ हो सो नहीं। जो यहाँ आते हैं उन सबको थोड़ा बहुत संदेह अवश्य होता है। मंदिर के शिखर के नीचे मनुष्यों को अच्छी तरह दिखलाई दे, ऐसे स्थान पर स्त्री पुरुष के संयोग की मूर्तियाँ देखकर लोगों को संदेह हो तो इसमें

उनका दोष भी नहीं है। दर्शकों के मन का भाव भी बिगड़े तो बिगड़ सकता है। मैंने इस विषय मे पुरी का माहात्म्य देखा तो उसमे कहीं इस बात का उल्लेख नहीं। यहाँ के पंडितों से पूछा तो केवल एक के सिवाय सबने योंही आँय बाँय शाँय उत्तर दिया। कोई कहते हैं कि यह मंदिर बैाद्धो का बनाया हुआ है पर ंतु अश्लील मूर्तियों की उनमे बिलकुल चाल नही। जैन मंदिरों मे अवश्य नग्न प्रतिमाओं का पूजन होता है कितु वे मूर्तियाँ महात्माओं की हैं। उनसे हमारा हजार मतभेद हो कितु जिन महात्माओं के लिये स्त्री पुरुष समान, पत्थर ओैर सोना एक सा उनकी नग्न मूर्तियों से मन का भाव नहीं बिगड सकता। महाप्रसाद के विषय मे मैंने जिन लोगों से छुआछूत न मानने की राय दी है वे ऐसी ही स्थिति के थे। हमारे शास्त्रों मे इसी लिये भगवद्भक्तो को बड़े बड़े विद्वानो से, राजा महाराजाओं से ऊँचा आसन दिया है। लोग भले ही ऐसी अटकल लगाया करे कितु मेरी समझ मे यदि यह मदिर सतयुग का बना नहीं तो हजार वर्ष से कम का भी नही है फिर उस समय ऐसी मूर्तियाँ बनाने की क्यों आवश्यकता हुई ? मेरे इस प्रश्न का उत्तर जो एक पंडित ने दिया उसका भाव यही है कि मंदिर शिल्प शास्त्र के नियमो के अनुसार बनाया गया है। उन्होने ताड़ पत्र पर लोहे की लेखनी से लिखे हुए एक प्राचीन ग्रथ मे लिखा हुआ बतला दिया कि ऐसी मूर्तियों की बनावट से मंदिर की वज्रपातादि

उपद्रवों से रक्षा होती है। तब मेरी समझ में आया कि ऐसे सुंदर, गगनस्पर्शी, विशाल मंदिर की शोभा के लिये ये मूर्तियाँ दिठौना हैं। दिठौने से बालक की सुंदरता घटने के बदले जैसे बढ़ती है वैसे ही इन मूर्तियों को देखकर मन का भाव बिगड़ने के स्थान में सुधरना चाहिए। मथुरा में यमुना पार एक शिवमूर्ति के दर्शन करके मनुष्य को जैसे शिक्षा मिलती है वैसे ही किसी प्रकार की शिक्षा इन मूर्तियों को देखकर ग्रहण करना चाहिए।"

"मैं मथुरा की कैसी मूर्ति? मैंने दर्शन नहीं किए।"

"उस समय गोकुलवाले साथ में थे इस लिये मैंने तुझे मंदिर के बाहर ही ठहरा दिया था। उस शिवमूर्ति के एक हाथ में जिह्वा है और दूसरे में ... । उस प्रतिमा से यह शिक्षा मिलती है कि ये दो इंद्रियाँ ही मनुष्य को धर्म से गिरा देने-वाली हैं इसलिये जो भवसागर पार उतरना चाहे वह इन पर काबू रक्खे और इस तरह काबू रक्खे। इन मूर्तियों से उप-देश मिलता है कि भगवान् के मंदिर में आकर भी जिस नर-नारी के मन में इस प्रकार के काम विकार उत्पन्न होंगे उनकी कहीं गति नहीं है। वे यहाँ आए हैं स्वर्गप्राप्ति के लिये किंतु उनके लिये कुंभीपाक तैयार है। जैसे ऊबड़ खाबड़ भूमि पर चलनेवाला मनुष्य प्रमादवश होकर जब ठोकर खाने की भूल करता है तब ही अनुभवी शिष्ट जनों के मुख से अनायास "खबरदार! सँभलकर!!" निकल जाता है, वैसे ही ये प्रति-

माएँ हमे उपदेश दे रही हैं—"खबरदार! इस स्वर्ग-सुख के भरोसे देवमंदिर मे आकर यदि भ्रम-वश भी तुम्हारे मन मे हमारा सा, किंचित् भी काम विकार उत्पन्न हुआ तो तुम ऐसे गिरोगे कि फिर कहीं ठिकाना नहीं। स्वर्ग मे निवास करनेवाले इंद्रादि देवताओ को, नारदादि ऋषियो को भी काम-वश गिरना पड़ा है।"

"बाबा की मूर्त्ति जैसे विलक्षण है वैसे उनकी सब बाते विचित्र हैं। दुनिया भर की प्रतिमाओ मे सौम्यता, सुदरता है और यहाँ भीषणता। हिंदू समाज मे जहाँ देखो तहाँ आचार की प्रधानता और यहाँ अनाचार की पराकाष्ठा। दुनिया मे अश्लील मूर्तियाँ निंदनीय और यहाँ खुलाखुली दिखलाई जा रही हैं।"

"इसका प्रयोजन यही है कि ये बाते ससारियो के लिये हैं और यहाँ आकर भगवच्चरणो मे जिनका अंतःकरण सच-मुच लिपट जाय वे द्विधा से, हर्ष-शोक से, मानापमान से, अपने पराए से, सब बातों से अलग हो जाते हैं। हो जाने मे ही सार्थकता है। उनके लिये जो कुछ है वह केवल भगवान् के पादपद्मों मे अचल, अटल, अव्यभिचारिणी भक्ति है।"

इस प्रकार से बाते करते करते पंडित जी को जब निद्रा आने लगी तब प्रियंवदा ने मौन धारण कर लिया। पैर दब-वाते दबवाते जब वह सो गये तब वह भी सो गई। यो इन लोगों को विश्राम मिला।

प्रकरण—४६

समुद्र स्नान की कथा

आज इन लोगों को पुरी में आए ठीक दस दिन हो गए। शरीर कृत्य, स्नान संध्यादि और ध्यान लेने के सिवाय इनका सारा समय जगदीश के दर्शनों ही में व्यतीत होता है। ये लोग दिन रात अभिरामामृत का पान करते तो हैं किंतु अघाते नहीं। इनकी इच्छा नहीं होती कि श्री चरणों को छोड़ कर घर का नाम लें। इन्होंने यहाँ आकर पुरी के यावत् तीर्थों का स्नान कर लिया, समस्त मंदिरों के दर्शन कर लिये और हमारी इस पंडित पार्टी ने "श्रीजगदीश-माहात्म्य" भी चित्त की एकाग्रता के साथ सुना। माहात्म्य श्रवण करने में इस पार्टी के अतिरिक्त वे दो यात्री और भी संयुक्त हो गए थे। पंडित जी और गौड़बोले विद्वान् थे। "घृताधारं पात्रं वा पात्राधारं घृतं" करनेवाले शुष्क नैया-यिक नहीं, वेदांत की फक्किकाएँ रट रटकर माथा खाली कर देनेवाले और संसार को तुच्छ समझकर अकर्मण्य हो जाने-वाले वेदांती नहीं, साहित्य शास्त्र का मथनकर बाल की खाल निकालने के साथ केवल प्यारी के, नायिका के चरणों में लोटनेवाले रसिक बनकर कुएँ के मेढक बननेवाले साहित्या-चार्य नहीं, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका तथा मीन, मेष,

वृप को अँगुलियों की पोरो पर योंही अटरम सटरम गिनकर यजमान की प्रसन्नता के लिये मिथ्या मुहूर्त बतानेवाले ज्योतिपी नहीं और प्रश्नकर्त्ता की इच्छा के अनुसार हाॅ मे हाॅ मिलाकर कभी स्याह को सफेद और कभी सफेद को स्याह व्यवस्था देकर व्यवस्था की मिट्टी खराब करनेवाले धर्म्मशास्त्री नही और सबसे बढकर यह कि व्याकरण के बल से वेद मंत्रों का अर्थ बदलकर, उनमे जो अंश अपनी राय के प्रतिकूल हो उसे क्षेपक बतला कर वेदों मे रेल और तारों का सब्ज बाग दिखलानेवाले आजकल की नई रोशनी के पंडित नही। ये लोग ऐसे पंडितों के कार्यों पर घृणा करते थे और इनकी दुर्दशा देख देखकर दु:खित भी कम नही होते थे। इसमे संदेह नही कि पंडित जी की थोड़ी और बहुत गति सब शास्त्रो मे थी और जितना उन्होने पढा, जितना उन्होंने मनन किया वह सार्थक था। केवल इतना ही क्यों? वह अँग-रेजी के अच्छे विद्वान् थे और भारतवर्ष की प्रचलित प्राय: समस्त प्रांतीय भाषाओं का भी ज्ञान उन्हें कम नही था।

बस इनको ऐसा विद्वान्, ऐसा गुणवान् देखकर उन दोनो यात्रियों ने समझ लिया कि जहाॅ तक बन सके इनसे पूछ पूछकर अपने संदेहों को निवृत्त कर लेना चाहिए। इसी उद्देश्य से जब तक पंडित जी पुरी मे रहे उन्होने इनका पिंड न छोड़ा। उन्होने समय समय पर सवाल पर सवाल पूछे और जो पूछा उसका संतोषजनक उत्तर पाया। उन यात्रियो

यह है कि जब तक पश्चिमी विद्वान् उन्हे न समझावे कि तुम्हारे शास्त्रो मे अमुक बात अच्छी है तब तक वे उस अच्छी को भी बुरी मानकर उससे घृणा करते हैं, उसकी निंदा करते है और पानी पी पीकर उसे कोसते हैं।"

"हाँ महाराज सत्य है। अब हमारी समझ मे आया। आप ठीक कहते हैं।" यो कहकर उन्होंने पंडित जी का पिंड छोड़ा। तब से उनका इस किस्से से संबंध नहीं रहा और न इसलिये उनके विषय मे कुछ लिखने की आवश्यकता रही। अस्तु अब पंडित जी प्रभृति यहाँ के देवदर्शनो से निवृत्त हो गए। अब उनके लिये केवल एक ही काम शेष रह गया। उस कार्य को भी उन्होने समय निकालकर कभी का निपटा लिया होता परंतु जब शास्त्र की आज्ञा है कि पर्वणी के बिना समुद्र स्नान नहीं करना चाहिए तब उन जैसा धार्मिक यदि पर्वणी की राह देखता हुआ वहाँ ठहरा रहे तो इसमे अचरज क्या? फिर जितने दिन अधिक ठहरना हो उतना ही पंडित जी का लाभ और पर्वणी को भी अधिक दिन नहीं फिर यदि उनके साथियों ने शीघ्र चलने का तकाजा भी किया तो वह समुद्र-स्नान का लाभ छोड़नेवाले व्यक्ति कहाँ?

खैर! आज कार्तिक कृष्णा अमावस्या है। दिवाली से बढ़कर पर्व कौन है? आज शीघ्र ही उठकर ये लोग स्नान संध्या से निवृत्त होकर श्री जगन्नाथ जी की मंगला की झाँकी करने के अनंतर समुद्र मे गोता लगाने गए। और तीर्थों की

है। क्षमा ही की बदौलत सागर जैसा बलवान पड़ोसी उस पर आक्रमण पर आक्रमण करते रहने पर भी उसकी एक अंगुल जमीन नहीं ले सकता। जो मुठमर्दी से छीन लेता है उसे उसको झख मारकर व्याज कसर के साथ लौटा देना पड़ता है।

समुद्र के किनारे खड़े होकर पंडित जी के मन मे ये ही भाव पैदा हुए और इस तरह जो उन्होंने पाया उसे कंजूस के धन की तरह छिपाया नही। जो कुछ पाया उसे औरो को दे दिया किंतु विद्यादान, शिक्षादान जैसे औरें को देने से बढ़ता है वैसे ही पंडित जी के अनुभव के खजाने मे भी एक की वृद्धि हुई।

अस्तु! यहाँ और विशेषकर भाटे के समय स्नान करना हँसी खेल नहीं। समुद्र-स्नान और ऐसे एकांत को याद करके प्यारे पाठक यह न समझ ले कि दंपती ने मैदान पाकर खूब जलविहार किया होगा, खूब होलियाँ खेली होंगी। जहाँ जल मे घुसते ही लहरें के जोर से पैर तले का रेता खिसकता है, जहाँ दस पंद्रह हाथ की मोटी लहर स्नान करनेवाले के माथे पर हाथ फेरती हुई उसे जलमग्न करके किनारे की ओर ढकेलती और आदमी को चित्त गिरा देती है वहाँ यदि प्रियं-वदा डर के मारे जल मे घुसने से घबडाती हो तो आश्चर्य नहीं। बड़ी देर तक समझा बुझाकर उसका भय छुडाने के अनंतर किनारे से कोई पाँच छः हाथ आगे बढकर उसने स्नान-किया और तब भीगे हुए कपड़े को इधर उधर से खैंचकर अपनी लज्जा छिपाती हुई वह मथुरा की घटना याद करके

कभी शर्माती और कभी पछताती, यहाँ किंचित् स्नान हो जाने से मुदित होती हुई बाहर निकली। ऐसे ही जब सब लोग स्नान कर्म से निवृत्त हो चुके तब पंडित जी बोले—

"ओहो! बड़ा गंभीर है! 'निज पानि' फैलाये इधर सीमों तक, हरिमन्दिर तक जल ही जल। जल क्या है मानो जल का एक पहाड़ खड़ा है! किनारे की भूमि से सागर ही नीचा होना चाहिए। नीचा है तब ही पुरी को अपनी ओर खैंचकर जलमग्न नहीं कर देता किन्तु इन पर्वतनुओं ने पहाड़ के समान ऊँचा दिखलाई दे रहा है। यह नीचा हो चाहे ऊँचाई से आकाश तक ही क्यों न पहुँच जाय, यह देवताओं का पूज्य और नदियों का स्वामी भी क्यों न हो और सूर्य भगवान् भी इसी से जल लेकर मेह क्यों न बरसावे किन्तु बड़ा ही मंद भागी है। भगवान के चरणों के निकट बसकर संसार सागर से पार कर देनेवाले पादपद्मों का दर्शन नहीं पा सकता। शायद सागरत्व का इसे घमंड हुआ था। उस समय भगवान् रामचन्द्र के बाणों की मार से इसको अकल ठिकाने आ गई थी। तीन चुल्लुओं में महासागर का पान करके महर्षि अगस्त्य जी ने इसका अभिमान गंजन कर दिया। और तो और एक क्षुद्राति क्षुद्र पक्षी के अंडे तक को यह न बहा ले जा सका। मानो इस तरह यह पुकार पुकार कर कह रहा है कि एक अतुल ऐश्वर्यशाली, परम पराक्रमी और बलवान् होने पर भी जब ईश्वर के चरणों के दर्शन

पाने से वंचित हूँ तब मैं किसी काम का नहीं। मेरे घमंड को चूर करने के लिये ही मेरे विशाल वक्षःस्थल पर जहाज दौड़ाए जाते हैं। मेरे अभाग्य में केवल इतने ही सौभाग्य का चिह्न समझो जो किसी सुकृत के फल से मेरे मोती प्रभुचरणों तक पहुँच जाते हैं और इसी का यह फल है कि पर्वणी पर लोग मुझमे आकर स्नान करते हैं। नहीं तो मेरा खारा पानी न किसी के पीने के काम आता है और न नाना प्रकार के पदार्थ पैदा करने के।"

बस इसी प्रकार की कल्पनाएँ करते और उन्हें साथियों को सुनाते पंडित जी घर गए। मार्ग मे उड़ियों के शरीर से तेल की दुर्गंध, मरी हुई मछलियों की खरीद फरोख्त और उनकी दुर्गंधि के मारे सिर फटा पड़ने की दुहाई देकर नाक पर कपड़ा लगाए चले जाने से लोगो ने पंडित जी से शिकायत भी कम न की किंतु उस समय वह गले मे उपवीत डाले एक ब्राह्मण को मछलियाँ खरीदते देखकर मन ही मन घबड़ा रहे थे, पछताते जाते थे और उनका ऐसा पाप कर्म देखकर उन पर दया करते जाते थे। इसलिये उन्होंने किसी की शिकायत पर कान न दिया। मकान पर पहुँचकर थोड़ा सुस्ता लेने के अनंतर उन्होंने इतना अवश्य कहा कि—

"बाबा का यहाँ यदि मंदिर न होता तो कदाचित् भारतवर्ष के धार्मिक हिंदू इसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। बिहार को गया और मिथिला ने पवित्र किया और उड़ीसा

प्रकरण—५०

भगवान् में लौ

भगवान् की पुरी धार्मिक हिंदुओं के लिये तो वास्तव में वैकुंठपुरी है हाँ किंतु नवीन समुदाय के लिये भी विश्रांति का केंद्र है। प्रथम तो समुद्र तटवर्तिनी भूमि का पवन ही सुख-स्पर्श होता है। वहाँ न शरीर को झुलसाकर व्याकुल कर डालनेवाली लू का नाम है और न प्राणी मात्र के जीवनाधार शारीरिक रक्त का शोषण कर डालनेवाली कड़ी धूप का। बढ़ते बढ़ते वायुवेग की मात्रा यदि कभी कभी बढ जाय तो भले ही बढ जाय किंतु समुद्र के श्रुतिमधुर निनाद के साथ पवन के झकोरो से वृक्ष पल्लवो की खड़खड़ाहट मिलकर भगवती प्रकृति देवी को एक अजब राग से अश्रुतपूर्व बाजा बजाने और मधुर स्वर अलापने का अवसर मिलता है। वहाँ नवीन काट छाँट से, गमलो की माला से और दूब के तख्ते बनाकर बाग बगीचो को चाहे कृत्रिम सौंदर्य की साड़ी न उढ़ाई जाय परंतु पुरी की पवित्र पृथ्वी को प्रकृति ने वन उपवन की स्वाभाविक हरियाली मे नैसर्गिक लता पल्लवों की साड़ी पहनाकर उन पर जंगली पुष्पो के हीरे मोती जड़ दिए हैं। जहाँ साक्षात् त्रिलोकीनाथ का निवास है वहाँ का जल वायु तो अच्छा होना ही चाहिए। बस इन्हीं बातो को ध्यान

यदि इस तरह गंदगी निकल सके तो अच्छी बात है किंतु इन बातों को देखते हुए भी पंडित जी से राह के दो तीन सौ कोढ़ियों की दुर्दशा देख देखकर आंसू बहाए बिना नहीं रहा जाता। अभी वह भगवान जगदीश के दर्शन का आनंद लूटते हुए वियोग से दुःखित होकर आंसू बहाने और "दाता फिर दर्शन दीजिए" की विनय सुनाते हुए मानो आज अपना सर्वस्व खोकर घर को जाते हों, इस तरह उदास मुख से, खिन्न मन होकर आए हैं। सुर दुर्लभ महाप्रसाद पर जाने अनजाने यदि पैर पड़ गया हो, यदि भूल से अथवा जान बूझकर अवज्ञा हुई हो अथवा किसी तरह का अनाचार या पाप हुआ हो उसकी निवृत्ति के लिये समुद्र में स्नान कर आए हैं। अब भोजनादि से निपटकर असबाब बाँधना और जगदीश के पंडे

शितिकंठ महाशय को भेट देकर केवल उनसे विदाई लेना और गाड़ी पर असबाब रखवाकर स्टेशन को चलना अवशिष्ट है। पडे महाराज भी उनके समीप हो विराजमान हैं। गुरूजी का खासा कृष्ण वर्ण, सुदीर्घ काय, बड़ी बड़ी आँखें और छोटा सा चेहरा, बस यही उनका रूप रंग है। उनके सिर पर बनारस का बना जरीदार रेशमी साफा उनके काले मुखारविंद पर अपने नील रंग के साथ साथ जरी की झलक दिखाकर अजब बहार दे रहा है। भीतर सूती बनयान और ऊपर मलमल का कुरता, कमर मे धोती और हाथ मे पानों का बटुवा, बस ये ही उनके वस्त्र है। एक नौकर की बगल मे दो तीन बहियाँ, हाथ मे दावात कलम और दूसरे के पास कंठी, प्रसाद और भगवान् के चित्र, बस यही सामग्री उनके साथ है। गुरू जी मे यदि सबसे बड़ा गुण देखा तो यह कि उनमे विशेष लोभ नहीं है। वह न तो किसी यजमान का जी मसोसकर पैसा मांगते हैं और न औरो की भाँति पाई पाई पर मूँड़ चीरते हैं। थोड़ी बहुत नम्रता करना, थोड़ी बहुत "नाही नूँहीं" करना, थोड़ा बहुत हठ करना उनका पेशा है। इतना भी न करे तो कदाचित् यात्री उन्हे अँगूठा दिखाने को तैयार हो जायँ किंतु उन्हे परिणाम मे जितना मिल जाय उतने ही पर संतोष है। आज भी उन्होंने पडित जी को अटका चढ़ाने का परामर्श दिया, करमाबाई की खिचड़ी के लिये सलाह दी और इसका अक्षय पुण्य

बतलाकर आग्रह भी किया किंतु अंत मे पंडित मडली ने जो कुछ दिया उस पर संतुष्ट होकर कंठी प्रसाद और चित्र देकर उनकी पीठ ठोक दी। पंडित जी भी ऐसे संतोषी ब्राह्मण को कम देनेवाले थोड़े ही थे। उन्होंने अंत मे यथाशक्ति गुरु जी की भेट करके उनसे कहा—

"महाराज, जो कुछ पत्र पुष्प हमसे बन सका आपकी भेट किया गया। जो कुछ दिया है वह केवल आपके योगक्षेम के लिये है। भगवान् का घर न हमसे भर सकेगा और न हम उनके कुवेर से भंडार में एक मुट्ठी डालने में समर्थ हैं। वह विश्वभर हैं और हम उनकी चरण रज के भिखारी। भक्ति पूर्वक प्रणाम करना ही उनकी भेट है। सो हमने यहाँ आकर भी किया और यदि उनका सचमुच अनुग्रह हो, यदि हमारा अंत:करण पवित्र होकर उनकी कृपा का अधिकारी बन जाय तो घर बैठे भी तैयार हैं क्योकि चोर जब किसी के घर से सेंध लगाकर अथवा ताला तोड़कर भीतर जाता है तब चोरी का माल पाता है किंतु उनके समान दुनिया में कोई चोर नहीं। बाबा हमारे घर से हजार मील पर बैठा है, कदाचित् इससे भी अधिक दूरी पर, किंतु यहाँ ही बैठे बैठे सात ताले के भीतर से, हमारे हृदय मे से उसका नाम लेते ही पाप चुरा लिया करता है। सो महाराज उसकी ऐसी चुराने की आदत देखकर सारे ही पापो का बोझा उसकी ड्योढ़ी पर डालने और उसकी अनन्य भक्ति की भिक्षा माँगने को आए

थे। आप ऐसा आशीर्वाद दो जिससे उसके चरणारविंदों से हमारा मन अलग न हो।"

"हाँ यजमान ठीक है। परंतु अटके और खिचड़ी का कुछ प्रबंध अवश्य होना चाहिए। इससे आपका नाम होगा।"

"महाराज, अटका खिचड़ी तो ठीक ही है। हमने भक्त-शिरोमणि करमाबाई और मलूकदास बाबा के दर्शन कर लिए। महाराज विश्वंभर को भरने की किसी मे सामर्थ्य नही इसलिये यदि आप उचित समझें, यदि आप प्रसन्नता से आज्ञा दें तो मेरे मन मे एक नया विचार उत्पन्न हुआ है। आशा है कि आप अवश्य स्वीकार करेंगे। मेरी राय यह है कि इस अटके और खिचड़ी में जितना द्रव्य लगता है उतना ही अथवा उससे मेरी शक्ति भर कुछ अधिक द्रव्य अलग रखें, उसमे आप भी अपने पास से यथाशक्ति कुछ देकर, अपने यात्रियो से दिलाकर, अन्यान्य पंडो को उत्तेजित करके इसी तरह अच्छी पूँजी इकट्ठा कर ले। जितने यात्री यहाँ आते हैं सबको समझाकर इस कार्य मे सहायता ले तो इन कोढ़ियों को रहने के लिये छाया का मकान, पहनने ओढ़ने के लिये कपड़े, भोजन को महाप्रसाद और इलाज तथा सेवा शुश्रूषा के लिये योग्य वैद्य और परिचारक मिल सकते हैं। ऐसी सेवा शुश्रूषा से इनके दैहिक कष्ट कम होंगे, महाप्रसाद से इनका अंतःकरण विमल होगा और तब प्रभु चरणो मे लौ लगने से इनका उद्धार होगा।"

"उत्तम परामर्श है। मैं सिर के बल तैयार हूँ। आपकी दी हुई भेट और अटका खिचड़ी का खर्च मिलाकर तो यह और इससे अधिक सौ दो सौ और भी मिला दूँगा। आज पीछे जितने यजमान यहाँ आकर मुझे देगे उसमे से पाँच रुपया सैकडा दूँगा। यात्रियों मे से इस कार्य के लिये जो कुछ मिल जाय वह अलग। मैं अपने और भाइयों को भी उत्तेजना दूँगा। आपने ऐसी सलाह देकर बड़ा उपकार किया।"

'महाराज, आप हिंदी बहुत शुद्ध बोलते हैं। इस देश मे ऐसी हिंदी! यहाँ तो उड़िया की "आशो! आशो!" चाहिए।'

"मैंने हिंदी पढ़ी है। मैं हिंदी के ग्रंथ और समाचार पत्र पढ़ा करता हूँ। यों भला मुझे तो हिंदी से प्रेम ही है किंतु यहाँ नगर भर मे फिरकर देखिए। यात्रियों मे बंगाली हैं, गुजराती हैं, मराठे हैं, मदरासी हैं, पंजाबी हैं और प्रायः सब ही प्रांत के लोग आते हैं। ऐसे समय हिंदी जाने बिना गुजारा नही। ये लोग आपस मे बातचीत करते समय हिंदी की शरण लेते हैं क्योंकि न तो एक मदरासी की बात पंजाबी समझ सकता है और न मराठे की बंगाली। लाचार हम लोगों को हिंदी सीखनी पड़ती है। हमारे जाति भाई और हमारे नौकर चाकर सब टूटी फूटी हिंदी बोल लेते हैं।"

"हाँ! इसी लिये हिंदी किसी दिन भारतवर्ष की सार्वजनिक भाषा बनने के योग्य है। बन भी रही है। प्रकृति स्वयं उसकी उन्नति कर रही है।"

इतनी बातचीत हो चुकने के अनंतर पंडित जी का अन्य यात्रियो से अपने संगी साथियो से संभाषण में महाप्रसाद की अवज्ञा पर, मत्स्यभक्षण के दोषो पर जो संभाषण हुआ था उसका प्रसंग छिड़ा। गुरूजी ने मस्तक झुकाकर इन दोषो को स्वीकार किया। अत मे कहा—

"ये बाते अवश्य मेटने योग्य हैं। उन्हे शीघ्र ही मिटाना चाहिए किंतु इसके लिये बहुत भारी उद्योग की आवश्यकता है। हथेली पर सरसों जमाने से काम न चलेगा। पीढ़ियो से पड़ा हुआ अभ्यास छुडाना है। यदि आप ही यहाँ दो चार महीना निवास करे तो काम शीघ्र हो सकता है। शक्ति भर सहायता देने और प्रयत्न करने को मैं तैयार हूँ किंतु आप जैसे पंडित की आवश्यकता है।"

इस पर पंडित जी का मन पिघल गया। नौकरी भले ही बिगड़ जाय परंतु यहाँ रहने को वे तैयार हुए। साथियों ने उनको बहुतेरा समझाया किंतु उनके मन मे अब यहाँ रहकर कर्तव्य स्थिर करने के लिये विचार-तरगें उठने लगीं। उन्होने किसी की कुछ न सुनकर बँधे बँधाए बिस्तरे खोल देने की भोला को आज्ञा दे दी। ऐसे जबरैली हुक्म के समय प्रियंवदा का क्या साहस जो उन्हे रोक सके। बिचारा भोला यदि कुछ कहे तो उसके लिये फटकार की पोशाक मिल जाय। औरो की भी इस समय ताव नही जो कुछ कह सकें। किंतु अंत मे होता वही है जो परमेश्वर को

स्वीकार होता है। जब भगवान् जगदीश की ही ऐसी इच्छा है तब कोई क्या कर सकता है? इस प्रकार जिस समय अपना असबाब खोलकर गाड़ीवालों को बिदा करके वहाँ ठहरने की ये तैयारी कर रहे थे तब ही इन्हे कांतानाथ का तार मिला। तार मे क्या लिखा था सो इन्होंने किसी को बतलाया नहीं। प्रियंवदा भी इनकी ओर निहार निहारकर बारंबार आँखो ही आँखो मे पूछती पूछती रह गई परंतु "कोई चिंता की बात नही। सब आनंद ही आनंद है" के सिवाय इन्होने कुछ न कहा और फिर सामान गाड़ियों पर लदवाकर स्टेशन की ओर कूच कर दिया।

पुरी से बिदा होकर पहले इनका दक्षिण की यात्रा करने का दृढ संकल्प था। इन्होंने अपने साथियों से यह कह भी दिया था किंतु इस तार ने इनका मनसूबा बदल दिया। "भगवान् की इच्छा ही जब ऐसी है तब हमारा क्या चारा? वह नटमर्कट की तरह सब को नचाता है। हम विचारे किस गिनती मे।" कहकर यह चुप हो गए। अब आँखो मे से आँसुओ की धारा बह रही है, यह गाडी मे सवार हुए है और इनका शरीर भी आगे बढ़ रहा है किंतु इनके मुख के भाव से बोध होता है कि मानो यह अपने हृदय को पीछे ही छोड़ आए हैं। इन्होने खिड़की मे से सिर बाहर निकाल रखा है और वे एकदम पलकें न मारकर "नील चक्र" पर नेत्र गाड़े चले जा रहे हैं। पहले तो साधारण दृष्टि से

उसके दर्शन होते रहे, फिर जरा जोर मारने से होने लगे और एक क्षण भर में नील चक्र दृष्टि-मर्यादा से बाहर हो गया। उसने मानो कह दिया कि "जाओ। इतने ही पर संतोष करो। जो पूँजी तुम्हे मिली है यदि भक्तिपूर्वक उसकी वृद्धि करोगे तो वह भी कम नहीं है।" परंतु पंडित जी ने जिसे एक बार पकड़ा उसे वे छोड़नेवाले नहीं। भगवत् चरणारविंद यदि सुकृत से, सौभाग्य से मिल जायँ तो छोड़ने योग्य भी नहीं। पृथ्वी मे, आकाश मे, पाताल मे, स्वर्ग मे और उससे भी ऊपर गोलोक मे परमेश्वर के पादपद्मों से बढ़कर कोई नहीं। बस इसलिये इन्होने महात्मा सूरदासजी का—

"बाँह छुड़ाकर जात हो, निबल जान कर मोहि।
हिरदा मे सों जायगो, मरद बदौंगो तोहि॥"

यह दोहा याद करके बस इसी बात के प्रयत्न मे अपना मन लगाया। मन स्थिर होते ही जब इन्हें कुछ ढाढ़स हुआ तब इनकी ऐसी ऐसी विचित्र चेष्टाओ को देखकर घबड़ाई हुई प्रियंवदा को इन्होने धीरज दिया, गौड़बोले की उद्विग्नता मेटी और औरो को भी संतुष्ट किया। पाठकों ने समझ लिया होगा कि पंडित जी इसके पूर्व विह्वल हो गए थे। वास्तव मे वह किसी लिये हों किंतु थे विह्वल और इसी लिये टिकिट लेने का काम गौड़बोले ने किया। वह भी घबड़ाहट मे थे और रेल की पहली घंटी हो चुकी थी इसी लिये दंपती के लिये उन्होने इंटर क्लास के टिकिट लेने की जगह थर्ड के

टिकिट लिए और यों सब लोगों को एक ही दर्जे मे बैठने का अवसर मिल गया ।

अब पंडित जी भगवान् का स्मरण करते, जगदीश की मूर्ति मे ध्यान लगाए, कभी बातें करते और बीच बीच मे रुक रुककर ध्यान-मग्न होते हुए आगे बढ़ने लगे । सच-मुच ही पंडित जी ने नेत्र संचालन के प्रेम-संकेत से अपनी चिर परिचित लोचनों की भाषा से प्रियंवदा को संतुष्ट कर दिया था किंतु जब तक उनकी गौडबोले से धाराप्रवाह वक्तृता न आरंभ हुई थी वह मन ही मन मन को मसोसती रही । अब उसके जी मे जी आया ।

प्रकरण—५१

कांता पर कलंक

पंडित रमाकांत शास्त्री ने लड़कों को पढ़ा लिखाकर रुपया कमाने में प्रवीण कर दिया था, वर्णाश्रम धर्म के सिद्धांत उनके हृदय पटल पर अंकित कर दिए थे, इहलौकिक और पारलौकिक ज्ञान उनके मन मे इस रीति से ठसा दिया था कि वे कभी ठोकर न खायँ और कभी भलाई छोड़कर बुराई की ओर एक पैर भी न बढ़ें। इतना होने पर भी उन्हे इस बात का खटका था कि कहीं युगधर्म बालकों पर अपना असर डालकर उन्हे रुपए पैसे के लिये आपस के लड़ाई झगड़े मे न प्रवृत्त करे, जवान होते ही अपनी अपनी जोरुओं को लेकर बेटे अलग न हो बैठें। यदि पड़ोसियों से लडाई झगडा रहा तो आदमी ने पैदा होकर ही क्या किया? यदि कुल के, जाति के, बस्ती के और हो सके तो देश के चार सज्जनों ने जिसकी प्रशंसा न की उसका जन्म लेना निरर्थक है। वह कहा करते थे—

"गुणिगणगणनारंभे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य।
तस्याबा यदि सुतिनी वद वंध्या कीदृशी भवति॥"

इस श्लोक को दिन भर मे कम से कम एक दो बार पढाकर वह बेटो को समझाया करते थे कि "यदि तुमने जन्म लेकर गुणवानों मे गणना न करवाई, यदि गुणवानों की

गणना करते हुए तुम्हारे नाम के साथ गिननेवाले का अँगूठा अँगुलियों की पोरो पर न पड़ा तो तुमने झख मारा, योंही अपनी माता को नौ महीने तक असह्य वेदना दी, तुम्हारे लालन-पालन मे वृथा ही उसने पीड़ा पाई और तुम्हारा खिलाया, पिलाया, पढ़ाया, लिखाया सब फिजूल गया।" माता उनकी चाहे पढी लिखी न हो किंतु पति के साथ, पुत्रो के साथ, पड़ोसियो के साथ और नौकरो के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए घर गृहस्थी मे रहकर क्योंकर अपनी बात निबाहनी होती है और स्त्री शरीर धारण करके उसका कर्तव्य क्या है, इन बातो को वह अच्छी तरह जानती थी और सदा इन्हो के अनुसार चला करती थीं। चोरी, व्यभिचार, मिथ्याभाषण आदि बुराइयो से उसे पूर्ण घृणा थी और वह सदा इसी विचार मे रहती थी कि कहीं मरे नन्हो मे ऐसे ऐसे ऐब न पैदा हो जायँ। यद्यपि अपनी जन्मदात्री माता का सुख इन दोनो भाइयो के नसीब मे नहीं था क्योकि वह दोनों ही को बिलबिलाते छोड़कर छोटी उमर मे चल बसी थी किंतु जब बूढी दुलरिया ने ही इनको पाल पोसकर इन गुणो से भूषित कर दिया तब उसे माता से भी बढ़कर इन्हे समझना चाहिए क्योकि अपनी असली माता के जो गुण इन्हे धरोहर मिले थे उन पर बुढिया ने ओप चढ़ा दिया।

ऐसे सज्जन माता पिता की संतान होने पर भी, सदा भाई भाई के संयुक्त रहने की सलाह देने पर भी, संयुक्त कुटुब के

लाभ समझाते रहने पर भी वे डरते थे कि कहीं बहुओं की बदौलत अथवा पैसे के लिये ये आपस मे उलझ न पड़ें, इस-लिये उन्होने अपने जीते जी अपने माल ताल का, अपने धन दौलत का, बाग मकान का, लेने देने का और जमींदारी का बटवारा कर दिया था। उनके लिये मकान इस ढंग के बनवा दिए थे जिनमे यदि वे अलग अलग रहे तो भी सुख से रह सकें, लड़ाई हो जाय तो एक की दूसरे पर परछाँही तक न पडे और मिलकर रहे तब भी सब बातों की सुविधा रहे। हाँ! दो चीजो के हिस्से नहीं किए थे। एक ठाकुर-सेवा और दूसरा पुस्तकालय। इनके लिये उनकी यह आज्ञा थी कि—

"यह तुम्हारी संयुक्त संपत्ति है। जो योग्य हो, जिसको आंतरिक भक्ति हो उसी का इन पर अधिकार है। नास्तिक को ठाकुर-सेवा देना कौवे को कपूर चुगाना है और निरक्षर भट्टाचार्य के पाले यदि मेरी पुस्तकें पड़ जायँ तो पंसारियों के यहाँ बिकती फिरे।" केवल यही क्यो? उन्होने इनके लिये अलग जीविका निकालकर ऐसा स्वतंत्र प्रबध कर दिया था जिससे ठाकुर-सेवा अच्छी तरह होती रहे और पुस्तकालय मे पुस्तको की वार्षिक वृद्धि होकर लोगो को उससे लाभ उठाने का अवसर मिले।

मकान उनके लिये जो बनाए थे वे यद्यपि ऐसे थे जिनसे घर के दस पाँच आदमी और दो चार नौकरो को स्वतंत्रता से रहने की गुजायश थी किंतु इसके साथ शास्त्री जी इस बात

को भी नहीं भूले थे कि यदि प्रारब्धवश मेरे लड़के इतने दरिद्री हो जायँ कि उनको पनिहारी, पिसनहारी रखने तक की शक्ति न रहे तो मेरी बहू-बेटियो को जल का घड़ा सिर पर रखकर बाहर न जाना पड़े। इस कारण उन्होने घर मे कुँआ भी ऐसा खुदवा दिया था जिससे बहू-बेटियाँ घर के भीतर से अदब के साथ पानी भर सके और ऐसे ही वह घर से बाहर-वालों के भी काम मे आ सके।

जब से अपने कुकर्मों के कारण सुखदा को सजा मिली तब से पति परमात्मा उसके हाथ का बनाया भोजन नहीं करते हैं। रूखा सूखा खाना, मोटा झोटा पहनना और चटाई पर पड़ रहना, घर से बाहर कभी कदम न रखना बस ये ही उसके लिये जेलखाने की मिहनते हैं। कृच्छ्र चांद्रायण व्रत करके पति की बहुत चिरौरी करने पर, फिर ऐसा अपराध स्वप्न मे भी न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करने पर पति ने उसे अपनी धोती धोने का, जूठे बरतन मल देने का अधिकार अवश्य दे दिया है। अब जब उस पर बहुत ही कृपा होती है तब वह पति की थोड़ी बहुत जूठन भी पा लेती है किंतु समझे पाठक! वह कृपा कब होती है? जब वह स्वयं अपनी आँखों से गोशाला मे जाकर गौओ की सेवा मे, बछड़े बछियो के लालन पालन मे उसे मस्त देखते हैं। जब शास्त्रकारो ने—

"आज्ञाभंगो नरेंद्राणां ब्राह्मणानामनादर.।
पृथक् शय्या च नारीणामशस्त्रविहितो वधः॥"

की व्यवस्था दी है और जब वह पति की उपस्थिति में उनके निकट रहकर भी वैधव्य भोग रही है तब उसके अंतः-करण मे व्यथा तो होनी ही चाहिए किंतु फिर भी जब से उसने गोसेवा मे मन लगाया है तब से वह इस दुःख को भी सुख मानकर मग्न रहती है। वह मग्न रहती है और इस आशा से आनंद मे रहती है कि उसे जो सजा दी गई है वह आजीवन नहीं है। उसकी अवधि है और अवधि के दिन दिन दिन निकट आते जाते हैं।

अवश्य यह इस घर के, पति पत्नी के परस्पर बर्ताव का खाका है किंतु मथुरा का तिरस्कार होने के दिन से जब उसके पास स्त्रियों का आना जाना बंद है तब लोगों को क्या मालूम कि वे आपस मे किस तरह बरतते हैं। कोई पत्नी के पैरों मे बेड़ियाँ डालकर नित्य उसके दस जूते मारने की दुहाई देती है और कोई कोई यहाँ तक कह डालती हैं कि वह बिचारी दाने दाने को तरस रही है। आठ पहर में एक बार रूखी सूखी मिल गई नहीं तो योंही भूखों मरते अपने घटते दिन पूरे किया करती है। इस प्रकार की बातें उड़ाना, यों कह करके पतिपत्नी की धूल उड़ा डालना जिसने ग्रहण किया है वह यदि आटा बाँध कर उनके पीछे पड़ जाय तो क्या आश्चर्य ? उसने तलाश कर करके दो चार ऐसी औरतें खड़ी कर ली हैं जो इनके घर की झूठी मूठी बाते गढ़कर उन पर खूब रंग जमाती हैं। "हलदी लगै न फिटकरी रंग चोखा आवे।"

इस कहावत के अनुसार रंग भी अच्छा जम गया है। अब कोई कहती है—"हमने अपनी आँखों से उसे जुतियाते देखा है।" किसी का कहना है—"हाँ! हाँ! पिटते पिटते उसके सिर के बाल उड़ गए।" इनके बीच मे पति का पक्ष लेकर कोई कोई कसम खाने तक को तैयार हैं—"मारे नहीं तो क्या करे? वह अब भी हरामजादी इधर उधर ताक झाँक लगाने से बाज नही आती।" एक बार एक आदमी ने कह दिया कि मेरे पेट मे से कौवे का पर निकला। कौवे का पर पेट मे से निकला नहीं था। वहाँ पडा देखकर यों ही उसे भ्रम हो गया था। किंतु जब यह खबर लोगो के कानो पर पड़ी तो एक से दो, दो से चार और यों ही बढ़ते बढ़ते सौ पर हो गए। पर से कौवे बन गए। बस यही दशा इन दंपती की है।

इस तरह बस्ती भर मे इनकी निंदा के तह पर तह चढ़ाए जा रहे हैं किंतु इन दोनो को बिलकुल खबर नही कि हमारे लिये लोगों ने किस तरह बात का बतंगड़ बना रखा है, कैसे हमारी फजीहती की जा रही है। बस इसी लिये ऊपर लिखा जा चुका है कि दंपती अपने अपने हाल खयाल मे मस्त हैं। उन्हे अपने काम से काम है। दुनिया के झगड़ों से कुछ मतलब नहीं। फिर पति को घरधंधों के आगे, अपने काम काज के मारे इतना अवकाश भी तो नही मिलता कि किसी के पास दस मिनट बैठकर इधर उधर की गप्पें तो सुन लिया करें।

खैर! वह इस तरह से चुप हैं तो रहने दीजिए किंतु जब मथुरा उन दोनो के पीछे पड़ी है तब वह चुप कैसे रह सकती है। आज उसे अकस्मात् मसाला भी अच्छा मिल गया। इनकी एक पड़ोसिन ने भोर ही पनघट के कुँए पर बस्ती के बाहर जल भरते भरते दस बारह पनिहारिनों के सामने मथुरा से कहा—"वीर! आज रात को हमारे पड़ोस में न मालूम धमाका किसका हुआ था? ऐसा धमाका कि मैं तो भरी नींद मे चौंक पड़ी। निपूती तब से नींद भी न आई।" बस इसका यह मतलब निकाला गया कि पति ने मारकर अपनी जोरू को कुँए मे गिरा दिया अथवा पिटते पिटते घबड़ाकर वही कुँए मे गिर पड़ी। बस बिजली की चमक की तरह घंटे भर मे यह बात सारी बस्ती मे फैल गई। इस पर खूब ही रंग चढ़ा, यहाँ तक कि थाने में रिपोर्ट करने लोग दौड़े गए। तीन मील चलकर एक साहब पंडित प्रियानाथ को तार देने दौड़े गए और कितने ही महाशय इस बात का भेद लेने के लिये, कई एक कातानाथ से सहानुभूति करने के लिये और बहुत से नर नारी तमाशा देखने के लिये पंडित जी के मकान के द्वार पर इकट्ठे हो गए।

बस पंडित प्रियानाथ के पास पुरी से विदा होते समय जो तार पहुँचा था वह उन्हीं साहब का दिया हुआ था। तारबाबू ने कातानाथ के नाम से दिया हुआ तार दूसरे के हाथ से लेने मे थोड़ी बहुत हुज्जत भी की थी किंतु पंडित जी

से उसका स्नेह और यह उनके घर का मामला, इसलिये वह तार को रोक न सका। जिस तार को पढ़कर उन्होंने दक्षिण यात्रा बंद कर दी उसमे लिखा था—

"मेरी स्त्री कुँए मे गिरकर मर गई। बड़ी भारी आफत है। मार डालने का इलजाम मुझ पर लगाया गया है। फौरन आओ।"

इस तार को पाकर पंडित जी ने क्या किया, इससे उनकी दशा क्या हुई, सो गत प्रकरण मे लिखा जा चुका है। हाँ उन्होंने जब अभी तक यह नहीं बतलाया कि तार को पढ़कर उनके मन मे क्या बात पैदा हुई, उन्होंने इस तार को सच्चा समझा है अथवा नितांत मिथ्या, और जब केवल अटकल लगाने के सिवाय उनकी अर्द्धांगिनी प्रियंवदा तक उनके मन का भेद नहीं जान सकी है तब जब तक वह अपने मुँह से न कह दे कौन कह सकता है कि उनको घबराहट केवल इस तार को पाने से थी अथवा श्री जगदीश के चरणों के वियोग से वह व्याकुल थे। इनमे से कोई एक बात भी हो सकती है और दोनों संयुक्त भी।

खैर! इस यात्रापार्टी को अभी इस उधेड़बुन मे पड़े रहने दीजिए, यदि पडित जी अपनी धुन मे सवार होकर रेल मे सवार हुए अपने घर की ओर आ रहे हैं तो आने दीजिए किंतु अब भी उनके पिता के उपकारों को याद करके, उनके आतंक से डरकर और कांतानाथ की लात से घबड़ाकर

और सबसे बढ़कर पुलिस के भय से उनके द्वार पर इतनी भीड़ इकट्ठी होने पर भी किसी का यह हियाव नहीं होता कि वह उनके मकान की चौखट के भीतर तो पैर रख सके।

किंतु वास्तव मे आज मामला क्या है? जिस बैठक में अब तक दस बीस आदमी आए और चले गए होते, जिसमे आसामियों की, कामकाजियों की और लेन देनवालों की प्रातःकाल से आवा जाही लगी रहती है उसका दस बजे तक किवाड़ा क्यों बंद है? घर का किवाड़ बंद होकर भीतर से साँकल चढ़ रही है और आदमियों के भीतर फिरने डोलने तक की आहट नहीं। हाँ! भीतर से कभी कभी सुरीली आवाज से कुछ गाने अथवा योंही गुनगुनाने की भनक अवश्य आ रही है परंतु इसका मतलब क्या? जिस समय वहाँ खड़े हुए नर नारी इस प्रकार तर्क पर तर्क लगाकर अपने संदेह को पक्का कर रहे थे उस समय भीड़ को अपनी डाँट डपट से डराती, इस तरह मैदान करती पुलिस आ पहुँची। अब एक, दो, दस, बीस कई एक आवाजें दी गईं परंतु जवाब नहीं। तब बढ़ई को बुलाकर किवाड़ तोड़ा गया। पुलिस ने कुँए के पास जाकर उसमे बिल्ली डाली परंतु थोड़े बहुत कूड़े करकट के सिवाय बिल्ली खाली। यद्यपि घर की तलाशी लेने के लिये पुलिस जाकर जनाने और मर्दाने मकानों को देख सकती थी, जो मुकद्दमे पुलिस की दस्तंदाजी के हैं उनमे उसके अधिकार अपरिमित हैं किंतु चाहे संकोच

से कहो चाहे कुँए में कुछ न पाने से उसका संदेह दुबला पड गया था, इसलिये भीतर जाने में उसे शंका हुई और इसी विचार मे उसने कोई बीस मिनट तक चुपचाप खड़ो रहने के सिवाय कुछ न किया।

इस अवसर मे कातानाथ बाहर से आए। वह शायद रात से ही कहीं गए थे। उन बिचारों को मालूम नहीं कि शत्रुओं ने इस तरह उन पर आफत बरसाने का प्रपंच खड़ा किया है। यद्यपि उन्हे आफत की परकाला मथुरा से खटका रहा करता था पर ंतु उनकी समझ मे न आया कि आज उनके मकान मे इतनी भीड क्यों है? अस्तु भीड़ तो भीड़ परंतु जब उनकी दृष्टि लाल साफे पर पडी तब वह एकदम हक्केबक्के से रह गए। इस घटना को देखकर वह घबड़ाए भी सही, शायद उन्हे उस समय कोई ढाढ़स दिलानेवाला होता तो वह रो पड़ते किंतु उन्होने अपनी तबियत सँभाली, जी कड़ा किया और तब एक डॉट बतलाकर वह बोले—

"हैं हैं! दीवान जी साहब आज यह क्या बला है? क्या डॉका पड़ गया? या कोई खून हुआ है? आज इस सरगर्मी के साथ?"

"नहीं! डॉका नहीं पड़ा! खून बतलाया जाता है। और उसके मुलजिम आप ही गरदाने गए हैं। इस आदमी (एक को दिखाकर) ने रिपोर्ट की है कि आपने अपनी जोरू का खून करके उसे कुँए मे डाल दिया।"

"हैं मैंने ? क्यों ? ऐसी क्या आफत पड़ी थी जो मैं एक औरत की जान लेता ? खैर ! कुँए से लाश बरामद हो गई ? अगर हो गई हो तो मेरा चालान कीजिए।"

"अजी हजरत, ऐसी टेढ़ी टेढ़ी बातें क्यों करते हैं ? जरा सँभलकर बात कीजिए। अगर लाश ही बरामद हो जाती तो कभी की हथकड़ी भर देते। मगर लाश ही बरामद न होने मे आप बरी नही हो सकते। आपको अपनी सफाई का सुबूत देना होगा।"

"खैर ! इज्जत तो आज आपने बिगाड़ ही डाली मगर मेरे साथ अंदर चलिए। शायद लाश ही अपना जवाब आप दे ले।" यों कहकर कांतानाथ दीवान जी का हाथ पकड़े हुए जनाने मकान मे जाकर बोले—

"अच्छा बोल री लाश, तुझे किसने मारा ?" उनके ऐसा सवाल करने पर परदे की ओट से जवाब आया—"कौन निपूता मुझे मारनेवाला है ? मैं तो अभी सौ वर्ष जिऊँगी।" आवाज सुनते ही पुलिस शर्मा गई, रिपोर्ट देनेवाले का खून सूख गया और भीड़ भाग गई। "अब भी आपको शक हो तो उस लाश को बाहर भी बुलवा सकता हूँ। खैर, पर्दा तो बिगड़ ही गया। अब बाहर बुलवाने मे क्या हर्ज है ?"

"नही ! जरूरत नही। यह हमारे गाँव की लडकी है, इनके वालिद और मेरे वालिद से खूब जान पहचान थी। मैंने सैकड़ो बार देखा भाला है। आवाज पहचान ली।"

"अच्छा! उसी रिश्ते से आज आप अपनी बहन को यह नेग देने आए हैं। बड़ी इनायत की।" इस पर दीवान जी कुछ झेंपे। उन्होंने अपने मन को संतुष्ट करने के लिये एक औरत भीतर भेजी परंतु जब उसने भी भीतर से आकर यही उत्तर दिया—"हाँ पंडित वृंदावनविहारी की बेटी और इनकी बहू सुखदा है।" तब शर्माते हुए—"आपको तकलीफ हुई। मुआफ कीजिए। मैं भी मजबूर था। मैंने अपना फर्ज मसनवी अदा किया और सो भी इस बदमाश के रिपोर्ट करने पर।" "नहीं कुछ हर्ज नहीं। आपका कोई कसूर नहीं। लेकिन लाला जी तुम तो मिठाई लेते जाओ।" कहकर कांतानाथ ने रिपोर्ट देनेवाले की खूब गत बनाई और इस तरह जब भीड छट गई तब भीतर जाकर "तैने खूब काम किया! शाबाश! आज से तेरे सब अपराध क्षमा। भाई से पूछकर तेरा अंगीकार।" कहते हुए वह दबे पाँव बाहर निकले और इस घटना का पूरा हाल सुनकर दौड़े हुए तारघर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने संक्षेप से बड़े भैया को तार दिया और तब घर लौटकर भोजन किया।

प्रकरण—५२

अपकार के बदले उपकार

"मुआ ऐसा भी क्या आदमी जिसने दुःख दे देकर मेरी बेटी का सारा डील सुखा डाला !"

"हाँ ! विचारी को न पेट भर खाने को मिलता है और न पहनने को अच्छा सा कपड़ा !"

"बेशक ! सूखकर काँटा हो गई। एक एक हड्डी हड्डी गिन लो।"

"आदमी नहीं ! भूत है ! जिन्न है। राकस है ! पत्थर से भी कठोर !"

"हाँ हाँ ! देखो तो सही गरीब का बदन सूखकर पिंजर निकल आया !"

कार्तिक शुक्ला प्रबोधिनी एकादशी के दिन पंडित जी के मकान पर भगवान् के दर्शनों के लिये आनेवाली चार पाँच स्त्रियों ने सुखदा के पास आकर इस तरह उसके साथ सहानुभूति प्रकाशित की। ये औरतें और कोई नहीं, इनकी किसी न किसी प्रकार से दूर की और पास की नातेदार थीं। उनकी हमदर्दी सच्ची थी अथवा सुखदा का मन टटोलने के लिये ही वे आई थीं सो कहने से कुछ लाभ नहीं किंतु पंडित कांतानाथ

की स्त्री ने उनको जो उत्तर दिया वह यहाँ उल्लेख कर देने योग्य है। उसने कहा—

"नही जी! मैं दुबली कहाँ हूँ? अच्छी खासी, मोटी मुस्टंडी हूँ। और खाते खाते ही सूख जाऊँ तो किसी का क्या वश? और जो दुबली भी होऊँ, मर ही क्यो न जाऊँ तो किसी को क्या? मैं बुरी हूँ तो (आँखें तिरछी करके, इशारे से समझाती हुई और तब लाज से मुँह को आँचल की ओट करके) उनकी दासी, चरणो की चाकर—और भली हूँ तो उनकी। वह हजार मारेगे और एक गिनेगे। तुम्हे क्या मतलब? मारे तो वह मेरे मालिक और प्यार करेंगे तो मालिक! भगवान् ऐसा मालिक सबको दे! मेरे स्वामी हैं। मैंने कभी कुसूर किया तो सजा भी पा ली। तुमको तुम्हारे आदमियो ने मारा पीटा, यहाँ तक कि (एक की ओर इंगित करके) इनको तो जूते मारकर घर से निकाल दिया था तब मैं किसके पास सुख पूछने गई थी जो आज मेरे पास भली बनकर तुम सब थाह लेने आई हो? तुम भी क्या करो? सारा कुसूर इस हरामजादी मथुरा का है! इसी ने झूठी मूठी बाते बनाकर मुझे बदनाम कर डाला। मैं फिर भी कहती हूँ (मथुरा से) तू अपना भला चाहती है तो अभी घर से निकल जा। नही तो जो उन्हे खबर हो गई तो अभी तेरी गत बना डालेगे। आदमी हैं। गुस्सा बुरा होता है।"

इनकी बातचीत किवाड़ की ओट से कांतानाथ सुन रहे थे। किसी को कुछ खबर न हो इसलिये उन्होने चुपचाप

साँस खैंचकर सारी बातें सुनी। बेशक उनका इरादा नहीं था कि वे इनकी बातो मे जाकर दखल देवे किंतु मथुरा का नाम आते ही इनका क्रोध भड़क उठा। इन्होने ज्यों ज्यों उसे रोका त्यो त्यों वह अधिक अधिक ज्वालाएँ छोड़ने लगा। बस किवाड़ को एक ही धक्का देकर खोलते हुए गुस्से से लाल लाल होकर यह भीतर घुसे। इनकी विकराल मूर्ति देखकर सबके होश उड गए। वे सब की सब भागी और ऐसी भागी कि किसी का रुमाल गिर गया, किसी का बटुआ गिर पड़ा और यहाँ तक कि किसी की पायजेब निकल गई। इनमे से दो एक उलझ उलझाकर गिर भी पड़ीं और एकाध का सिर भी फूट गया किंतु इस भाग दौड़ मे मथुरा की चोटी इनके हाथ आ गई। यह उसे खैंचकर उसकी लातों से पूजा करने ही वाले थे। उसकी गत बनने मे कुछ कसर बाकी नहीं थी। क्रोध बहुत बुरी बला है। हृदय मे उसका प्रवेश होते ही बुद्धि भाग जाती है, ज्ञान का नाश हो जाया करता है। इसी लिये अनुभवी विद्वानो ने इसको भूत की उपमा दी है। वास्तव मे यदि क्रोध का भूत सवार हो जाने से पंडित जी उसके एकाध हाथ मार बैठते तो बड़ा गजब हो जाता। वह चाहे जैसी पापिनी क्यो न हो, उसने इनका कितना ही अपकार क्यों न किया हो किंतु स्त्री जाति पर हाथ उठाना घोर अनर्थ है। खैर किसी तरह के पाप कर्म मे प्रवृत्त होते समय जैसे मनुष्य का अंतःकरण, उसकी बुद्धि मन का हाथ पकड़ लिया करती है,

जैसे एक बार वह ऐसा काम न करने की चितौनी देती है वैसे ही इनके मन के उछलते हुए, चौकड़ी भरते हुए घोड़े की बाग उसने पकड़ ली। जूते समेत लात और घूँमा बँधा हुआ हाथ इन्होंने उठाया तो सही किंतु एकदम कुछ विचार आते ही यह सँभले और उसके शरीर की ओर देखते ही इनका क्रोध दया मे बदल गया—

"राम राम! बड़ा अनर्थ हो जाता। जाने दो राँड को! परमेश्वर इसे दंड दे रहा है। इससे भी बढकर देगा। इसके शरीर मे कोढ़ चू उठा। इससे बढ़कर क्या दंड होगा!" कहते हुए इन्होंने अपना हाथ और पैर समेट लिया और वह भी समय पाकर अपनी जान लिए हुए ऐसी भगी कि मुद्दत तक उसकी शकल भी न दिखलाई दी। कोई वर्ष दो वर्ष के अनंतर यदि वह दिखलाई भी दी तो कोढ़ के मारे उसकी अँगुलियाँ गल गई थीं। तमाम बदन फूट निकला था। मक्खियाँ काट काटकर उसे कल नहा लेने देती थी और दुर्गंधि के मारे किसी से उसके पास होकर निकला तक नहीं जाता था। खैर उसने जैसा किया वैसा पा लिया। जो बबूल बोता है उसे काँटे ही मिलते हैं, आम नहीं। यह इन लोगो की भलाई है कि उसके इतने अपकार का बदला इन्होंने उपकार मे दिया। जब तक उसके शरीर मे प्राण रहे, उसके पापी प्राण वास्तव मे बड़े ही घोर कष्ट भोगकर निकले, इन्होंने उसके खाने पीने का, पहनने ओढ़ने का

और दवा दारू का प्रबंध कर दिया और जब उसका शरीर कीड़े पड़ पड़कर, दम घुट घुटकर बड़ी मुशकिल से घोर नरक यातना भोगकर छूटा तब उसे गड़वा दिया और उसके मरने के बाद उसका कर्म करवा दिया। अपकार के बदले उपकार करने का यही नमूना है, जो जैसा करता है वह वैसा पा लेता है। इसे साबित कर देने के लिये यही प्रमाण है। अस्तु इस बात से इस किस्से का विशेष संबंध नहीं। यदि संबंध भी हो तो विशेष कागज रँगने से पुस्तक की मोटाई बढ़ जायगी। इसलिये इतना ही बहुत है। यहाँ यह अवश्य लिख देना चाहिए कि जिसका जो कुछ गिरा था वह आदमी के हाथ उसके मकान पर भेज दिया गया और जब उसके घरवालों को इस बात की खबर हुई तब उन्होंने अपनी अपनी स्त्रियो को फटकारा भी खूब। खैर! इस तरह जब मथुरा अपनी जान लेकर भाग निकली तब पति ने पत्नी से कहा—

"बेशक, अब तू सँभल गई। इतने दिनों के कठिन व्रत ने तुझे सँभाल लिया। परमेश्वर ने तुझे बचाया। वही सब की लाज रखनेवाला है। भाई साहब भी अब शीघ्र ही आने वाले हैं। अब विशेष विलंब का काम नहीं। घबड़ाना मत।"

"यह सब आपके चरणों का प्रताप है। मेरे तो भगवान् भी आप और आप भी आप। नहीं जी! इतने दिन न घब-

ड़ाई तो अब क्या घबड़ाऊँगी ? अब वे दोनो आने ही वाले हैं। वे जैसी आज्ञा दें वैसा करने को तैयार हूँ। उनसे भी अपने कुसूरों के लिये मुआफी माँगूँगी।"

इतना कहते हुए सुखदा रोने लगी। पति ने धीरज दिलाकर दिलासे के वचन कहकर उसको संतुष्ट किया और तब वह अपने काम काज मे प्रवृत्त हुए। ऐसे कांतानाथ अपने काम मे लग ही गए तो क्या हुआ किंतु उनके अंत:करण में एक तरह का खटका हो गया। अब उन्हे दो बातों की चिंता थी। एक इस प्रकार की बदनामी उडानेवाले कौन कौन हैं और दूसरे हमारे लिये सर्व साधारण की राय क्या है ? जब से वह अधबिच मे यात्रा छोड़कर घर आए उन्होंने अपने काम काज मे विशेष जी लगाकर, नए नए काम खोलने मे प्रवृत्त होकर लोगो से मिलने भेटने से मन खैंच लिया था। संसार का मुख्य सुख, यावत् सुखो का केंद्र स्त्री और उसके ऐसे कुकर्म। बस इन बातों को याद करके वह एक तरह दुनिया ही से उदासीन हो गए थे। क्योकि अपने नित्य और नैमित्तिक काम मे दिन रात उलझे रहने के सिवाय यदि वह जरा सा भी अपने जी को किसी तरफ लगाते तो उनके सामने स्त्री के कर्म, उसको दंड इत्यादि बातें आ खड़ी होती थीं। वह अपने भाव को बहुतेरा छिपाते किंतु जो बात मन मे होती है मुख उसकी चुगली खा दिया करता है। लोगों से न मिलने जुलने का एक यही प्रधान कारण था।

अस्तु, अब उक्त प्रश्नों ने उनके अंत:करण को दबाया। अब देवदर्शनो मे, काम काज मे वह लोगों से मिलने लगे। जिनसे राह मे भेंट होने पर वह कतरा जाया करते थे उनसे खड़े होकर बातचीत करने लगे। कान लगा लगाकर इधर उधर की बाते सुनने लगे। परिणाम इसका यह हुआ कि इनके प्रश्नो का इन्हे यथार्थ उत्तर मिल गया। इन्होंने निश्चय कर लिया कि बदनामी करनेवालों की बदनामी है। लोग उन्ही के जीवन पर थूकते हैं, यहाँ तक कि जो तार देनेवाला था तथा जिसने पुलिस मे रिपोर्ट की थी उन्हे कोई भला आदमी पास बैठने नही देता है। जहाँ ये लोग जाते हैं वहीं से दुतकारे जाते हैं। यदि यह घटना न होती तो शायद लोगो के मन पर कांतानाथ की, उनकी सुखदा की बुराइयाँ बनी रहतीं किंतु कपड़े की मैल जैसे धोबी की भट्टी मे पड़कर उबाले जाने से निकल जाती है वैसे ही इस घटना ने दंपती के चरित्र को स्वच्छ कर दिया, उज्ज्वल कर डाला, यहाँ तक कि इस घर की सज्जनता देखकर जो लोग इनकी बदनामी उड़ाने मे थे वे अब पछताते हैं, कितने ही लज्जा के मारे इन्हे मुँह नहीं दिखाते और कितने ही इनसे क्षमा माँगने को तैयार हैं।

लोगों का यह ढंग देखकर दो तीन आदमियो ने इनको यहाँ तक सलाह दी कि "ऐसे बदमाशों पर नालिश ठोककर उन्हे सजा दिलानी चाहिए ताकि आगे से किसी भले आदमी की इज्जत बिगाड़ने की किसी को हिम्मत न हो।" दस बीस

आदमी अदालत मे जाकर गंगा उठाने को तैयार थे और सबसे बढ़कर पुलिस का रोजनामचा इनके लिये पक्का सुबूत था किंतु यह सलाह इन्हे पसंद न आई। इन्होंने उन लोगों से खुले शब्दों मे कह दिया—

"नहीं जी। यह सलाह अच्छी नहीं। उस दिन मैंने उस आदमी को मारा, इसी पर मैं पछताता हूँ। भाई साहब भी मुझसे नाराज होंगे। जैसे के साथ वैसा वर्ताव करने मे हमारी शोभा नहीं। जिन्होंने बुरा किया है उन्हे परमेश्वर अवश्य दंड देगा। देख लेना। और उन्हे दंड भी न मिले तो क्या? परमेश्वर उन पर दया करे। यदि बिच्छू अपने डंक मारने की आदत न छोड़े, बेशक वह नहीं छोड़ेगा क्योकि उसका यह स्वभाव ही है, तो हम उसकी रक्षा करने का काम क्यों छोड़ें? हिंदू उसी उदारता से, ऐसी ही दयादृष्टि से साँप बिच्छू को नहीं मारते और न मारने देते है। एक बार एक महाशय जलाशय के किनारे बैठे बैठे संध्या कर रहे थे। एका-एक उनकी दृष्टि जल मे पड़े हुए बिच्छू पर पड़ी। उन्होंने जिस हाथ मे लेकर उसे निकाला था बाहर आते ही उसने उसी पर डंक मारा। डक मारते ही उनके हाथ से वह जल मे गिर गया फिर उन्होने दया करके उसे निकाला किंतु फिर भी डंक मारे बिना उससे न रहा गया। यों उन्होंने जैसे उसे निकालना न छोड़ा वैसे उसने भी उन्हें डंक मारना न छोड़ा। जब ऐसे ऐसे उदाहरण हमारे सामने विद्यमान हैं, जब घोर

कलिकाल मे भी हम ऐसी ऐसी अनेक घटनाएँ देखा करते हैं तब हमें चाहिए कि हम सज्जनता का, भलाई का और क्षमा करने का अनुकरण करें ।"

कांतानाथ की इन बातों ने उन लोगों का हृदय पिघला दिया। चारों ओर से वाह वाही का डंका बजने लगा, शाबाशी की आवाजें आने लगीं और धन्यवाद की बौछारें आरंभ हो गईं । उनकी दयालुता, उनकी क्षमाशीलता और उनका उदार हृदय देखकर सचमुच ही जो लोग उनकी बदनामी करने से अगुआ थे वे पछताए । उनके मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होने कांतानाथ के चरणो मे सिर आ रक्खा । "तुम्हारा कुछ दोष नही । समय पर ऐसी ऐसी चूक बड़ों बड़ों से हो पड़ती है । दोष हमारे नसीब का है । मैं तुम्हारा समस्त अपराध क्षमा करता हूँ । पाप का प्रायश्चित्त पश्चात्ताप ही है । इससे वढ़कर कोई नहीं, सो तुम अपने अंतः-करण से कर रहे हो । तथापि यदि हो सके, हो ही सकेगा, तो सवा लक्ष गायत्री का जप करना । इससे बढ़कर कोई उपाय नही ।" यह कहकर जब उन दोनो को बिदा करने लगे तब इनकी पड़ोसिन बुढ़िया ने, जो कुँए की आवाज का डंका पीटनेवाली थी, इनके पैरो पड़कर कहा—

"आप चाहे मारें चाहे निवाजें । आपका मुझसे बहुत बड़ा क़ुसूर हो गया । मैं ही इस झगड़े की जड़ हूँ । मैंने मथुरिया के बहकाने से, उससे एक रुपया पाने के लालच

में आकर, झूठमूठ जाहिर कर दिया। मैं न तो उस रात अपने मकान में सोई और न मैंने कोई धमाका सुना। नाराज होते होते चाहे ये दोनों मेरी जान ही क्यों न ले डालें, आगे पीछे मुझे मरना ही है, अब जीकर कहां तक चक्की पीसती रहूँगी, परन्तु सच कहती हूं। उस गाड़ मसुरिया का इन दोनों से ऐसा ही वास्ता है। मैं क्या कहूँ? आपकी बदनामी इन तीनों की गोष्ठी में हुई है। झूठ मानों तो इनसे पूछ देखो।" इस पर उन दोनों ने अपना अपराध स्वीकार किया। कांतानाथ ने उनका अपराध अवश्य क्षमा कर दिया परंतु बिरादरीवालों ने उनको, और बुन्धिया को जाति बाहर कर दिया। इसके अनंतर क्षय में, कोट से, अन्न बिना तरस तरसकर उन लोगों की मौत हुई सो लिखकर किस्सा बढ़ाने की आवश्यकता नहीं।

प्रकरण—५३

दीनबंधु के दर्शन

उंचासवें प्रकरण के अनंतर प्राणेश्वर की धाराप्रवाह वक्तृता सुनकर यदि प्राणप्यारी को संतोष हो गया हो तो अच्छी बात है, हो जाने दीजिए। पत्नी को प्रसन्न रखना पति का प्रधान कर्तव्य है किंतु पंडित जी अब भी बातें करते करते बीच बीच मे, कभी कभी रुक जाते हैं, मौन व्रत धारण कर लेते हैं और अपने कमल नयनो से दो चार आँसू गिराकर तब अर्द्ध स्फुट शब्दों से—"भगवान् की इच्छा! ईश्वर की लीला!" कहकर फिर गौड़बोले से बातों मे प्रवृत्त हो जाते हैं। उनकी ऐसी दशा घंटे दो घंटे रही हो तब तो कोई बात नहीं किंतु श्री जगदीशपुरी से चले एक दिन गुजरा, एक रात गुजरी और फिर दूसरा दिन गुजरने को आया। केवल गौड़बोले से संभाषण होने ही पर यदि कोई मान ले कि उनकी विह्वलता मिट गई तो माननेवाले को अधिकार है किंतु उनके हृदय की वास्तविक विह्वलता अभी ज्यों की त्यों है। यदि कंजूस के धन की तरह पंडित जी अपने मन की बात मन मे न छिपाते, साथियों के सामने प्रकाशित कर देते तो उनके मन का बोझा थोड़ा बहुत हलका भी हो जाता क्योंकि दुःख दूसरों को सुनाने में घटता और सुख बढ़ता है। औरों के

आगे प्रकट कर देने से मन के काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकार दुःख, सुख, शोक, भय इत्यादि शांत होते हैं।

कुछ भी हो किंतु पंडित प्रियानाथ यों ही करते करते अपने साथियों सहित जो मुगलसराय स्टेशन पर पहुँचे तब एकाएक उनकी दृष्टि पंडित दीनबंधु पर पड़ी। गाड़ी ठहरते ही पंडित जी उतरकर लपके हुए उनके पास गए। पहुँचकर इन्होंने उनके चरणों में सिर रख दिया। समस्त साथियों ने पारी पारी से उनको प्रणाम किया। दीनबंधु ने प्रियानाथ को उठाकर अपनी छाती से लगाया और पंडितजी के "आप यहाँ कैसे ?" इस प्रश्न के उत्तर में "इसलिये" कहकर पंडित दीनबंधु ने उनके हाथ में तार का लिफाफा दिया। इन्होंने खोलकर उसे एक बार पढ़ा, दूसरी बार पढ़ा और तब भोला के हाथ प्रियंवदा के हाथ में पहुँचाते हुए कहा—

"हे भगवन् ! तुमने बड़ी कृपा की !. हे दयासागर ! तुमने बचाया ! हे परमेश्वर ! अब जी में जी आया ! आपकी लीला अपार है। अब मुझे बोध हुआ कि आपकी इच्छा हमें दक्षिण यात्रा कराने की नहीं थी। अब सिद्ध हो गया कि आप सचमुच प्राणी मात्र को नटमर्कट की तरह नचाते हैं। आपने गीता में धनुर्धर अर्जुन को विराट् स्वरूप के दर्शन कराकर दिखला दिया है कि हम सब निमित्त मात्र हैं। होता वही है जो आपको मंजूर होता है। यह भी एक आफत थी। बिचारे को निरपराध कष्ट उठाना पड़ा। खैर, अच्छा हुआ।

जल्दी बला टल गई। भगवान्, तेरा धन्यवाद! रोम रोम से धन्यवाद!"

ऐसे पंडित जी ने, पंडितायिन ने तार पढ़कर अपना संतोष कर लिया। पंडित दीनबंधु से दोनों तार पढ़वाकर उनका संदेह निवृत्त कर दिया किंतु गौड़बोले, भगवानदास, बुढ़िया, गोपीबल्लभ और भोला क्या जानें कि तार मे क्या है? पहिले तार मे क्या लिखा था सो पाठक पचासवें प्रकरण मे पढ़ चुके हैं। दूसरे तार का भावार्थ यों था—

"बदमाशो ने झूठा इलजाम लगाने मे तो कसर नहीं रखी थी। एक मेरे नाम पर आपको झूठा तार दे आया और दूसरे ने पुलिस मे झूठी रिपोर्ट की। पुलिस आई भी किंतु जब मामले की कुछ बुनियाद ही नहीं तो अपना सा मुँह लिए लौट गई। हम दोनों प्रसन्न हैं। लोग उन दोनो पर मुकद्दमा चलाने की सलाह देते थे किंतु मेरी इच्छा नहीं है। मरे को क्या मारना? आप ही मर जायँगे, जेठ चलंते बाट।"

सब लोगों को तार सुनाकर पंडित जी बोले—"शाबाश लड़के! वाह री क्षमाशीलता! सज्जनों को ऐसा ही चाहिए। परंतु क्यो महाराज! आपको यह तार कैसे मिला? और आपको यह क्या मालूम कि मैं इस ट्रेन से आनेवाला हूँ?"

"इसका यश पुरी के पंडा शितिकंठ जी को है। बोध होता है कि आपके रवाना होने के अनंतर उनको कांता भैया का तार मिला। तार की बात ठहरी। उन्होंने खोलकर पढ़

लिया। और आपके पास इस खबर को पहुँचाना विशेष आवश्यक समझकर उन्होंने मुझे तार दिया। देख लो! तार उनका भेजा हुआ मेरे नाम है।"

"हां बेशक! फिर?"

"जिस समय तार मिला, मैं आप ही के नाम घर के पते पर चिट्ठी लिखकर लेटरबक्स में डालने जा रहा था। रेल का टाइम निकट देखकर इस चिट्ठी को जेब में डालता हुआ काशी स्टेशन पर पहुंचा। टाइमटेबुल से समय का हिसाब मिलाकर मैंने अनुमान कर लिया कि आप इस गाड़ी से आनेवाले हैं अथवा पुरी से चलकर जल्दी से जल्दी इस समय यहां पहुँच सकते हैं।"

"अच्छा महाराज, आपको बहुत परिश्रम हुआ। आप मुझे उपकार के बोझ से दबा रहे हैं। जब आप पिता हैं तब मैं आपके कहां तक गुण गान कर सकता हूं।" यों कहते हुए फिर प्रियानाथ ने दीनबंधु के पैर पकड़ लिए। चिट्ठी में क्या था सो वह इनसे न कहने पाए। गाड़ी रवाना होने को एक दो और तीन घंटियां हो गईं। आगरे जाने के लिये इन लोगों को यहां गाड़ी बदलनी थी। बस चट पट वे गाड़ी में सवार हुए और उनके अनुग्रह से दबे हुए उनकी प्रशंसा करते हुए वहां से चल दिए। यहां यह भी लिख देने की आवश्यकता है कि पंडित पंडितायिन ने एक एक गिन्नी पंडित दीनबंधु को भेंट की थी किंतु उन्होंने ली नहीं। "ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

कहते हुए वह भी नजर भर प्रेम के साथ उन पर दृष्टि डालते हुए उसी समय जिस गाड़ी से ये लोग उतरे थे उसी मे सवार होकर बनारस चले गए। पंडित दीनबंधु के पत्र को प्रियानाथ ने पढ़कर "जैसा करता है वैसा पाता है।" कहते हुए जँगले मे हाथ डालकर दूसरे कंपार्टमेट मे प्रियवदा की ओर फेक दिया और पत्र को पढ़कर कुछ मुसकुराती हुई वह भी उसे अपनी जेब मे डालकर चुप हो गई।

इससे पाठको ने समझ लिया होगा कि इस बार पंडित जी जुदे दर्जे मे थे और पंडितायिन जुदे मे। केवल इतना ही क्यो, गाड़ी मे भीड़ की कसामसी से हर एक आदमी को अलग अलग बैठना पड़ा था। इस तरह वहाँ से रवाना होकर आगरे तक पहुँचने मे इस पार्टी ने अलग अलग कंपार्टमेट मे बैठकर जो जो देखा उसे पृथक् पृथक् लिखकर विस्तार करने की आवश्यकता नही। तीसरे दर्जे मे सवार होकर अधिक भीड़ के समय जो अनुभव होता है उसे सब जानते हैं। गत प्रकरणो मे समय समय पर थोड़ा बहुत लिखा भी गया है। हाँ देखना यह है कि गाड़ी से उतरने पर प्रियंवदा प्राणप्यारे से क्या रिपोर्ट करे। खैर, घर पहुँचने की जल्दी मे अयोध्या न जाने का दुःख सबको था।

प्रकरण—५४

जनानी गाड़ी

दूसरे कंपार्टमेंट में, जिसमें प्रियंवदा सवार हुई थी, आठ दस स्त्रियाँ और थीं। उनके कपड़े लत्ते से, उनकी रहन सहन से और उनके बर्ताव से विदित होता था कि वे किसी भले घर की बहू-बेटियाँ हैं। यदि ऐसा न होता तो पंडित जी कुछ न कुछ और उपाय करते क्योंकि "दूध का जला मठे को भी फूँक फूँककर पिया करता है।" प्रियानाथ प्रियंवदा के उन महिलाओं में हिल मिलकर बैठ जाने से कुछ निश्चित अवश्य हुए किंतु प्रत्येक स्टेशन पर उतर उतरकर उसकी खबर लेते रहे और रात भर उसी खटके में उन्होंने निद्रा के नाम एक पलक तक न मारी। गाड़ी में सवार होने के अनंतर आपस में जान पहचान होकर इधर उधर की गप्पें होने लगीं। जहाँ चार औरतें इकट्ठी होती हैं वहाँ या तो आपस में कलह होती है, या औरों की निंदा होती है और जो ये दोनों बातें न हुईं और सब की सब जवान उमर की हुईं तो अपने अपने शौहर की, अपने अपने बाल बच्चों की अथवा अपने अपने धन दौलत की, रूप लावण्य की बातें होती हैं।

प्रियंवदा को उस प्रकार के निरर्थक गपोड़े जैसे पसंद नहीं थे वैसे एक और ललना भी इन स्त्रियों की ऐसी ऐसी

बातों से मन ही मन कुढ़ती थी। उसकी सत्रह अठारह वर्ष की जवान उमर, अच्छा मनोहर गेहुआ रंग, गोल और सुंदर चेहरा, खंजन की सी लंबी लबी आँखें, सिर पर मेमो का सा जूड़ा, रेशमी फूलदार साड़ी और पैरों मे काले मोजों के ऊपर काली गुच्छेदार जरा जरा सी एड़ी की बढ़िया गुर्गाबियाँ थीं। उसके एक हाथ मे छाता और दूसरे मे एक अँगरेजी किताब के सिवाय आँखो पर सुनहरे फ्रेम का चश्मा चढ़ा हुआ था। हाथो मे विलायती सोने की मरोड़ोदार, पतली पतली सी दो दो चूड़ियाँ और दहने हाथ की अनामिका अँगुली मे वैसे ही सोने की एक अँगूठी थी। प्रियंवदा को बहुत ही घूरकर देखने पर विदित हुआ कि उस पर लैटिन भाषा का एक शब्द खुदा हुआ था जिसका अर्थ है "भूल न जाइए।" वह ललना बार बार उस अँगूठी को देख देखकर मुसकुराती जाती थी और कही अँगुली मे से वह गिर न जावे इसलिए सँभालती और अँगुली ही मे उसे घुमाती जाती थी। दोनों ही दोनो की ओर देख देखकर न मालूम क्या विचार करने लगीं। चाहे पुरुष हो या स्त्री हो किसी नवीन व्यक्ति को जब कोई देखता है तब उसके मन मे कुछ न कुछ भाव अवश्य पैदा हो उठता है। पुरुष पुरुष को देखे तब भाव भिन्न, पुरुष स्त्री को देखे तब भाव अलग किंतु दूसरी स्त्री को देखने पर एक ललना के मन मे जो भावनाएँ उत्पन्न होती हैं वे विलक्षण हैं। उनकी थाह नारी-हृदय के सिवाय किसी को नही मिल सकती। और

रमणी-हृदय जैसे गहन होता है वैसे ही दूसरे का मन पह-चान लेने की शक्ति भी उसमें अतुलनीय होती है। सर्व साधारण यदि अटकल लगाना चाहें तो अधिक से अधिक यही परिणाम निकाल सकते हैं कि जैसे एक युवा पुरुष किसी सुंदरी युवती को देखकर काम-पीड़ित होता है वैसे ही जवान औरत सुंदर सुडौल पुरुष को देखकर होती होगी। अथवा एक युवती दूसरी युवती को देखकर डाह कर सकती है, घृणा कर सकती है और दया कर सकती है। किंतु नहीं! यह फैसला बहुत ही भद्दा है। इस फैसले में ओछेपन की इतिश्री है। चाहे कोई स्त्री हो अथवा पुरुष हो, यदि उसने थोड़े प्रतिवाद के सिवाय उस व्यक्ति का चरित्र न लख लिया तो किया ही क्या? दोनों ने दोनों को नख से शिख तक देख भालकर एक दूसरे के लिये क्या फैसला दिया सो मैं नहीं बतला सकता अथवा यों कहो कि मेरा पुरुष-हृदय दोनों के नारी-हृदयों का पता पाने ही से असमर्थ है। अब पाठक पाठिकाओं को अधिकार है कि दोनों के परस्पर संभाषण से थाह पा लें।

अस्तु, जब योंही दोनों को मौन व्रत साधे दो तीन स्टेशन निकल गए तब प्रियंवदा ने कहा—

"बहन, आप तो पढ़ी लिखी मालूम होती हैं। कदाचित् आपने अँगरेजी की उच्च शिक्षा पाई है? क्यों बी० ए०?"

"हैं? हां! योंही। (कुछ लजाकर) इस बार बी० ए० की परीक्षा दूँगी!"

"बाल बच्चा क्या है ?"

"अभी से ? अभी तो मेरी शादी भी नहीं हुई ।"

"अच्छा मैं समझी । क्षमा करना ! तब ही आप बार बार अपने प्यारे की यादगार निरख निरखकर मुसकुरा रही हैं । बहन, तुम भले ही बुरा मानो । मेरा स्वभाव मुँहफट है । इधर रेनाल्ड की प्रेम कहानियाँ पढ़ना, प्राणप्यारे की अँगूठी धारण करना, उसे बारंबार निरखना और उधर अब तक शादी न करना । तुम ही सोचो । यह स्वतंत्रता कहाँ तक अच्छी है ? यही विवाह के पहले गौना है । आग और घी पास रहकर न पिघले यह हो नहीं सकता और एकांत मे मिले बिना प्रेम परीक्षा काहे की ?"

"अच्छा तो (कुछ झेपकर) आपका प्रयोजन यह है कि यह स्वतंत्रता तो बुरी और दिन रात घर के जेलखाने मे जेवर की बेड़ियाँ डाले चक्की चूल्हे से माथा मारते रहना अच्छा है । हमारे देश मे वास्तव मे स्त्री जाति पर बड़ा अत्याचार हो रहा है । वे या तो केवल बच्चा देने के काम की हैं अथवा अपने आदमी की गुलामी करने के । जिस देश मे पति की जूँठन खाना ही धर्म, उसकी लातें खाना ही प्रेम, जहाँ पढ़ने लिखने का द्वार बंद और जहाँ अपने आदमी को पहचानने से पहले ही गुड़िया गुड्डे की तरह शादी हो जाती है, जहाँ विधवा विवाह घोर पाप माना जाता है वह देश कभी नही सँभलेगा, दिन दिन गिरता ही जायगा और इसके

को पढ़ लिखकर बीस वर्ष खराब कर देने पर भी, हजारों रुपए नष्ट कर डालने पर भी और "नई जवानी माँझा ढीला" की कहावत के अनुसार स्वास्थ्य का खून हो जाने पर भी कौड़ी काम का नहीं रखती तब उस शिक्षा से स्त्रियों का सर्वनाश समझो। ऐसी ऊँची शिक्षा पा लेने पर भी न तो उन्हे धर्म का किञ्चित् ज्ञान होता है और न दुनियादारी का। भले ही वे एक कारीगर के बेटे पोते हो किंतु उन्हें पढ़ लिख-कर बसूला पकड़ने मे शर्म आती है और जो कही किसी के कहने सुनने से अथवा पेट की आग ने जोर मारकर उसे उठवाया भी तो दस मिनट मे वे हाँप उठेगे। यदि वे दूकान खोलने का इरादा करते है तो रुपया चाहिए और उनका बाप उनकी पढ़ाई मे अनाप सनाप खर्च करके कर्जदार बन गया है। इसलिये पढ़ने लिखने का फल यही होता है कि वे बीस पचीस रुपए की नौकरी के लिये दौड़े जाते हैं, अफसर की लाते खाते हैं, गालियाँ खाते हैं और जन्म भर कुएँ के मेढक की तरह "चलते हैं लेकिन ठौर के ठौर।" बस इसलिये वे अवश्य "पहाड़ खोदकर चूहा" निकालते हैं और इसलिये कि पास का परवाना लेकर जब वे किसी आफिस मे उम्मेद-वारी करते हैं तब दो वर्ष तक उन्हे फिर काम का ककहरा सीखना पड़ता है।"

"हाँ मैंने मान लिया कि पुरुषो की शिक्षा-प्रणाली अच्छी नही है परंतु स्त्रियों को कैसी शिक्षा मिलनी चाहिए?"

बातों का अभ्यास होता है और न सामर्थ्य। और इस कारण उन्हें ऐसी शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए जिससे वे पहले घर गृहस्थी के उपयोगी चीजें बनाने सुधारने में होशियार हो और तब मौज शौक की चीजे सिखाई जायँ। परंतु पुस्तके ? पुस्तकें किस भाषा में, किस तरह की, कौन कौन सी ?

"अँगरेजी पढ़ने से मुझे शत्रुता नहीं है। मैं भी ससुराल में आकर अपने उनके पास थोड़ा बहुत सीख गई हूँ किंतु ऐसा नहीं है कि अँगरेजी के बिना खाना हजम ही न हो। देश भाषा का अच्छा ज्ञान उन्हे अवश्य होना चाहिए। केवल इतना ही नहीं जिससे चिट्ठी पत्री लिख पढ़ सकें। स्त्रियों के उपयोगी संस्कृत के, अँगरेजी के और फारसी अरबी के जो जो अच्छे ग्रंथ मिल सके उनका हिंदी उलथा, अच्छी अच्छी पुस्तको के आधार पर अपने ढंग के अनुसार तैयार किए हुए उपयोगी ग्रंथ हों और यदि अवकाश मिले तो अपना मन प्रसन्न करने अथवा पति के आमोद प्रमोद के लिये कुछ गायन कविता। किंतु आपके इस रेनाल्ड के नावेल की तरह ऐसी कोई भी पोथी उनके हाथ मे न पड़नी चाहिए जिससे उनकी व्यभिचार में प्रवृत्ति हो। सच्चेप यह कि उन्हे ऐसी ऐसी पुस्तकें पढ़ानी चाहिऍ जिनसे उनकी परमेश्वर मे अविचलभक्ति बढे, वह माता पिता सास ससुर और शिष्ट जनों का आदर करना सीखें, पति को अपना इष्टदेव मानकर उसकी सेवा करें, पति के सिवाय पर पुरुष को, बाप भाई और मामा

पेट भर गया। जब परमेश्वर ने आदमी और औरत को समान पैदा किया है तब पुरुषो के समान हमे स्वतंत्रता क्यों न मिले ?"

"नही। समान पैदा नहीं किया। दोनों की बनावट में अंतर, दोनों के काम में अंतर और दोनो के विचार मे अंतर है। यदि समान ही पैदा किया है तो शादी होने के बाद अपने शौहर से काम की बदली कर लेनी चाहिए। उनसे कह देना कि नारियों ने युगों तक गर्भ धारण करने की घोर यातना भोग ली अब नौ महीने तक पेट मे बालक रखने की मेहनत तुम उठाओ। अब हम तुम्हारे बदले बाहर जाकर कमाई का काम करेंगी।"

"नही। (लजाकर) ऐसा क्योंकर हो सकता है ? प्रकृति के विरुद्ध।"

"जब यह नही हो सकता तब बराबरी भी नही हो सकती ! मेरी समझ मे संसार में स्वतंत्र कोई नहीं है। प्रजा राजा की परतंत्र है, राजा परमेश्वर का परतंत्र है, स्त्रियाँ पुरुषों की परतंत्र हैं और पुरुष स्त्रियों के परतंत्र हैं, यहाँ तक कि एक व्यक्ति महाराजाधिराज होने पर भी खिदमतगारों का, नाई का, धोबी का और मेहतरो का परतन्त्र है। और जो आपके से विचारवाली स्त्रियाँ परतत्रता की बेड़ी तोड़कर स्वतंत्र बनना चाहती हैं वे पति का, घरवालों का, समाज का और राजा का दबाव न मानने से कामदेव की परतंत्र बनकर व्यभिचार करती हैं, क्रोध की परतंत्र होकर पाप करती हैं

"राम राम ! आपने तो बड़ी गंदी बात कह डाली।"

"बस दंपती के एक शरीर का मर्द दहना अंग और औरत बॉया अंग है। दोनो अपना अपना काम आप आप करते हैं किंतु दूसरे को जब मदद की आवश्यकता हो तब एक तैयार !"

"अच्छा ! यह भी समझ लिया। आपके विचार ठीक ही हैं। और यह तब ही हो सकता है जब कि पति मे अगाध भक्ति हो, अनन्यता हो। पति भी पत्नी को अपना शरीर समझे। जिनमे स्वतंत्रता का भूत सवार हो गया है वे अवश्य पति का आदर नहीं करती हैं। परंतु विवाह के विषय मे आपकी क्या राय है ?"

"इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले मैं आपको एक बात और सुझा देती हूँ। यदि आपको सचमुच ऐसी गृहिणी बनना हो तो भारतवर्ष के इतिहास पुराणों का अवलोकन कीजिए। ऐसी रमणियो के चरित्रो का संग्रह "सतीचरित्र संग्रह" मे देखिए। "आदर्श दंपती," "हिंदू गृहस्थ," "बिगड़े का सुधार," "विपत्ति की कसौटी" और "स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी" आदि अनेक ग्रंथ आपको मिलेगे। रेनाल्ड के नावेलों को फेंक दीजिए। ये आपके चरित्र को बिगाड़नेवाले हैं।"

"बेशक ! अच्छा विवाह ?"

"हॉ ! इस विषय मे मेरी राय यह है कि स्त्री जाति कभी कुँवारी रहकर अपने सतीत्व का पालन नहीं कर सकती।

डालना नितांत भूल है। सरासर पाप है। स्त्रियाँ पढ़ते पढ़ते यदि पचीस वर्ष भी कुँवारेपन में क्यों न निकाल डाले किंतु उनके माता पिता को जितना अनुभव है उतना क्या उससे आधा चौथाई भी उनको नहीं हो सकता। वे जैसे अच्छे घराने का, अच्छा विद्वान् और अच्छे शील स्वभाववाला वर तलाश करके उसकी जैसी जाँच कर सकते हैं वैसी जाँच युवती कुमारिका से नहीं हो सकती और इसी लिये छठे महीने तलाक देने के लिये अदालत में दौड़े जाना पड़ता है।"

"खैर! यह भी मान लिया किंतु दक्षिण देश मे मुरलियों के नाम से कितनी स्त्रियाँ आजन्म कुँवारी रहती हैं। वे मंदिरो को भेड़ बकरियों की तरह भेंट की जाती हैं। उनका क्या यह धर्म है?"

"नहीं! कदापि नहीं! यह धर्म के नाम से पाप है। केवल दक्षिण मे ही नहीं। ऐसे ऐसे अनर्थ उत्तर मे, अलमोड़ा की ओर भी होते हैं। यह पाप शीघ्र बंद होना चाहिए।"

"अच्छा तो विवाह के लिये उमर कौन अच्छी है?"

"मैं युवती विवाह को बहुत बुरा समझती हूँ। जिन लोगों मे अनाप शनाप दहेज देने की चाल है उनमे रुपए के अभाव से चालीस पचास वर्ष की उमर तक बहन बेटी को कुँवारी रखकर घोर अन्याय किया जाता है। जैसे प्राणी मात्र को किसी न किसी प्रकार की खुराक आवश्यक है वैसे स्त्री के लिये पुरुष और पुरुष के लिये स्त्री का संबंध एक प्रकार

जिन लोगों मे ऐसी रिवाज है उनमे दंपती का प्रेम नहीं होता, ईश्वर पर भी आदमी की भक्ति इसी लिये है कि उसकी बदली नहीं होती। नहीं तो लोग नित्य नया बनाकर उसे बदला करे। प्रथम तो पति मे ऐसी खराबी ही क्या, जो हो भी वह उसकी इच्छा के अनुसार चलने मे भलाई मे बदल जायगी। और यदि उसमे चोरी, अन्याय, व्यभिचारादि दोष आ पड़ें तो उन्हे सुधारना चाहिए। स्त्री का सुधारा पति अवश्य सुधर सकता है। पातिव्रत मात्र उसमे चाहिए। "हिन्दू गृहस्थ" और "बिगड़े का सुधार" देखिए।"

"मान लिया कि अच्छी स्त्रियाँ पति को ठिकाने ला सकती हैं परंतु विधवा की हमारे यहाँ निःसंदेह दुर्दशा है। उन पर घोर अत्याचार होता है। उनका विवाह अवश्य होना चाहिए।"

"विवाह उन विधवाओं का होता है जो शूद्र अथवा अति शूद्र हैं। उच्च वर्णो मे बिलकुल अयोग्य है। जिनमे ऐसी चाल है उनमे से भी जो ऊँचे खयाल के हैं वे इस चाल से घृणा करते हैं। "तिरिया तेल हमीर हठ" का सिद्धांत हिंदू नारियो के मन पर अंकित है। यदि विधवा विवाह का प्रचार किया जाय तो फल यह होगा कि दांपत्य प्रेम नष्ट हो जायगा। किसी न किसी कारण से आपस मे कलह होते ही एक दूसरे को जहर देने पर उतारू होगा। ऐसा करके हत्या की संख्या न बढाइए। शास्त्रो मे भी इसी लिये इसका

प्रकरण—५५

संयोग का सौभाग्य

हमारी पंडित पार्टी को आगरे मे कुछ काम नहीं था। यदि थोडा बहुत काम भी निकल आवे तो जब ये घर पहुँचने की उतावल से अयोध्या ही न जा सके तब इससे बढ़कर आगरे मे कौन काम हो सकता है ? खैर, यमुना स्नान करके कालिंदी कूल पर भोजन करने के अनंतर ये लोग गाडो के टाइम पर आ पहुँचे और वहाँ से सवार होकर अजमेर पहुँचे। मार्ग मे कोई ऐसी घटना नहीं हुई जो उल्लेख करने योग्य हो। जब थोड़ा और बहुत, रेल का सफर करनेवालों के सामने स्टेशनो के गुण और दोष अनुभव मे पक्का करने के लिये आ खड़े होते हैं तब उनके लिये भी कागज खराब करना अच्छा नहीं। हमारी पार्टी को घर छोड़े बहुत मास व्यतीत हो चुके, ज्यों ज्यों घर पास आता जाता है त्यो ही त्यो शीघ्र ही गृहप्रवेश के लिये चटपटी बढ़ने लगती है। ऐसी दशा मे अब पंडित मडली को इधर उधर के झगडों मे उलझा रखना मानो उनके आतुर मनों को, संयोग की लालसा से मनमोदक बनाने का आनंद लूटते समय वियोग का पर्दा बीच मे डालकर विषाद की झलक से उनके मुख कमल को मुरझा देना है। आइए, आइए, इसलिये अजमेर का स्टेशन आते ही बहुत काल के

जाते हों, उनका हृदय कमल न झुलसा दिया जाता हो तो सचमुच संयोग जैसा मधुर पदार्थ भी सीठा है।

इस उपन्यास के दीन मतिहीन लेखक मे सामर्थ्य कहाँ जो गोस्वामी तुलसीदास जी की तरह, हजारो लाखों वर्ष बीत जाने पर भी पाठकों के, हृदय चक्षुओ के सहारे, इन चर्म चक्षुओं के सामने राम-भरत के प्रेम-सम्मिलन का हूबहू चित्र खड़ा कर दे। वैसा नहीं, उसका शतांश भी नहीं! हाँ यदि उसकी परछाही भी दिखलाई देने लगे तो इस लेखक का सौभाग्य। सौभाग्य इसलिये कि इसमे उसकी योग्यता कुछ नहीं। यदि वह बहुत ही कोशिश करे तो उनके भावों की चोरी कर सकता है। ऐसी चोरी थोड़ी और बहुत सब ही करते आए हैं और जब उन्होंने अपने भावों को सर्व साधारण के उपकार के लिये खोलकर रख दिया है तब ऐसी नकल चोरी नहीं कहलाती। लेखको की चोरी, डकैती भिन्न प्रकार की होती है।

अस्तु! प्रियानाथ और प्रियंवदा के समीप पहुँचते ही कांतानाथ और सुखदा ने उनके चरणो में सिर रख दिए। गठजोड़े से नहीं, क्योंकि शास्त्रीय कामो का संपादन करने के लिये पति के उत्तरीय का एक कोना स्त्री की साडी से बाँध दिया जाता है। दोनों का संबंध अलौकिक होने पर भी, दंपती के एक प्राण दो तन होने पर भी हृदय के गठजोड़े के समक्ष कपड़े का गठजोड़ा कोई चीज नहीं। केवल उसका अनुकरण है। बेशक आज इन दोनो का दोनों प्रकार का गठजोड़ा नहीं

है किंतु जब दोनों अलग होने पर दोनों के हृदय का भाव एक है, दोनों ही दोनों को भक्ति पुष्पांजलि समर्पण करने के लिये एकाग्र हुए हैं और जिनकी आराधना करने के लिये इन्होंने सिर नवाए हैं वे एक प्राण दो तन हैं तब आज से ही कांतानाथ और सुखदा के हृदय का गठजोड़ा समझ लो। "भैया उठो! लल्ला उठो।" कहकर जब दोनों कह हारे तब पंडित जी ने बलपूर्वक उठाकर कांतानाथ को छाती से लगा लिया, छोटी के मस्तक पर हाथ फेरा और तब चारों एक दूसरे की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगे। हाँ! यहाँ इतना अवश्य कह देना चाहिए कि प्रियंवदा का अर्द्धस्फुट घूँघट देवर के मुख कमल को पुत्रवत् निरख रहा था और देवर भौजाई जब नतभ्रू होकर अवाक् थे तब सुखदा बिचारी की आँखों के सामने गाढ़े घूँघट की कनात खड़ी थी।

कोई दस मिनट तक ये लोग यों ही खड़े रहे। किसी के मुख से कोई शब्द भी न निकलने पाया। ऐसे आत्मीय के सम्मिलन के समय मुखरा वाणी भी जब कर्तव्य-शून्य होकर प्रेम प्रवाह में अपनी वाचालता को बहा देती है तब सबके सब गूँगे की तरह हैं, उनमें से कोई भी बोलता तो किस तरह! अन्तु पंडित जी ने सब से पहले अपने प्रेम-रुदन को सँभाला। वह कहने लगे—

"स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु,
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु।

ऐश्वर्यमस्तु बलमस्तु रिपुक्षयोस्तु,
वंशे सदैव भवता हरिभक्तिरस्तु ॥"

और साथ ही "अखंड सौभाग्यवती पतिपरायणा पुत्रवती भव" कहकर उन्होंने एक बार फिर सुखदा के सिर पर हाथ फेरा। कांतानाथ की जब अभी तक प्रेम-विह्वलता बनी हुई थी तब उसके मन मे ऐसा आशीर्वाद सुनकर कैसे भाव पैदा हुए सो मैं क्या कहूँ किंतु सुखदा को निश्चय हो गया कि "मुझे मनवांछित फल मिल गया।" बस वह आनंद मे मग्न होकर थाह पाने का प्रयत्न करती हुई सब के साथ गाड़ियों मे चढ़कर पुष्कर पहुँची।

"पुत्रवती भव" का आशीर्वाद पाकर सुखदा को यद्यपि निश्चय हो गया कि अब पति के मुझे अंगीकार कर लेने मे संदेह नही है किंतु अभी तक उसके हृदय की धड़कन कम नही हुई थी, बस इसलिये पंडित जी के मुख से फैसला सुनने के लिये वह जिस समय आतुर थी उसी समय पुष्कर के विमल सरोवर के तटवर्ती वृक्षो से, लता पल्लवो से और शुभ्र सुंदर भवनों से आच्छादित कुंज मे प्रवेश करते करते उन्होंने कहा—

"आज बहू के समस्त अपराध तीर्थगुरू के तट पर क्षमा कर दिए गए। परमेश्वर अपने अखंड अनुग्रह से इसे पतिपरायणता का आदर्श बनावे और इसके पुत्र हो और चिरंजीवी हो, यह मैंने आशीर्वाद भी दे दिया परंतु शास्त्र की मर्यादा के लिये इसे पंचगव्य प्राशन और हेमाद्रि स्नान

और करा देना चाहिए। कृच्छ्र चांद्रायण व्रत यह अनेक कर हो चुकी। बस इतना करने के अनंतर हमारे पूर्वजों के श्राद्ध के लिये पाक संपन्न करने की यह अधिकारिणी है। इसलिये हमारी इच्छा है कि पहले इससे यह कार्य कराकर तब इसके हाथ से बनाए हुए पाक से हम श्राद्ध करें।"

पितृ तुल्य पंडित जी की आज्ञा सुखदा ने माथे चढ़ाई। यद्यपि उसने अपने मुख से न "हाँ" कही और न "ना" और ज्येष्ठ श्रेष्ठों के समक्ष वह कहती भी क्योंकर! यदि परदेश न होता तो उनके समक्ष आने से भी क्या मतलब था? किंतु उसके मुख के भाव से प्रियंवदा ने जान लिया कि "जो कुछ आज्ञा हुई है उसे सिर के बल करने को वह तैयार है।"

पंडितजी की इच्छा थी कि सुखदा का प्रायश्चित्त कराने का कार्य और उन्हें श्राद्ध कराने का काम इस बार गौड़बोले जी करें। जब वह साथ ही इसके लिये थे तब उन्हें उज्र भी क्या हो? किंतु पुष्कर की सीमा में पैर रखते ही अन्यान्य तीर्थों की तरह यहाँ भी भूतों ने घेर लिया था। और और तीर्थों में तीर्थगुरुओं के मारे, भिखारियों के कष्ट से यात्री तंग हो जाता है, चाहे जैसा दृढ़-संकल्पी हो उसकी श्रद्धालुता की जड़ यदि उखड़कर न गिर जाय तो हिल अवश्य उठती है फिर पुष्कर सब तीर्थों का गुरु है। शिष्यों से गुरु में यदि कुछ अधिकता न हो तो वह गुरु ही कैसा? सूर्य निकलते पंडों के झुंड में, भिखारियों की [illegible] से और [illegible] की निद्रा-

हट से पूर्व प्रसंग स्मरण करके यद्यपि पंडित जी का धैर्य छूट ही जाता किंतु सौभाग्य से पंडित प्रियानाथ जी का पंडा "साक्षरा" को "राक्षसा" मे बदल देनेवाला साक्षर नही सचमुच, साक्षर निकला। वह अच्छा कर्मकाडी, नामी वैयाकरण होने के साथ ही अच्छा ज्योतिषी और अच्छा वैद्य भी था। इन गुणों के अतिरिक्त पंडो भर मे, बस्ती भर मे उसकी धाक थी। बस पंडित धरणीधर मिश्र का नाम सुनते ही समस्त पंडे अपनी अपनी बहियाँ बगल मे दबाकर अलग हो गए और भिखारियों की भीड़ भी छँट गई।

शास्त्र की विधि के साथ, श्रद्धापूर्वक, लोभरहित होकर प्रत्येक कार्य मे प्रियानाथ जी को संतुष्ट करते हुए दोनो कार्य इन्ही महाशय ने कराए। जब कार्य की समाप्ति का समय आया तब फिर पंडित जी बोले—

"हाँ! एक बात कहनी और रह गई थी। बहू रानी, इस मध्य पिंड का भोजन आज तुम्हारे ही लिये है। खूब भक्तिपूर्वक भोजन करना। इसके सिवाय और कुछ नहीं।"

सुखदा ने चाहे इसका मतलब न समझा हो परंतु प्रियंवदा ने पति की आँखो मे अपने नेत्र उलझाकर मुसकुराते हुए सुखदा के कान मे कुछ कहा और लज्जित होकर उसने अपना सिर झुका लिया। पंडित जी की पहली आज्ञा की जिस तरह तामील हुई थी उसी तरह इस समय हुई और यों श्राद्ध अनुष्ठान सुखपूर्वक संपन्न होने पर जो सुखदा किसी

समय दुःखदा कहो गई थी वह आज सच्ची सुखदा बनकर अपनी जेठानी के चरणों में लोटती हुई उससे क्षमा पर क्षमा माँगने और कहने लगी कि "जब तक तुम 'माफ कर दिया' न कहोगी तब तक उन चरणों को न छोड़ूँगी।" प्रियंवदा ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और तबसे दोनों में सगी बहनों का सा प्रेम हो गया।

पंडित जी ने, उनके साथियों ने धरणीधर महाराज को, वहाँ के अन्यान्य सुपात्र ब्राह्मणों को और दीन भिखारियों को यथाशक्ति दान देकर क्योंकर उन्हें अपने मधुर भाषण से संतुष्ट कर दिया और क्योंकर उनके आशीर्वाद से वे गद्‌गद हो गए सो कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि तीर्थ-स्नान और दर्शन करनेवाले सज्जनों को इसका थोड़ा बहुत अनुभव होता ही है। हा! एक घटना से उनका हृदय एकदम दहल उठा। पंडित जी जैसे दयालु ब्राह्मण के आँखों देखते, उनके निकट से जगज्जननी, परम वंदनीया गौ माता को पामर मगर किनारे से खैंचकर और गौ भी जल-पान करते समय ले जावे, इनके नेत्रों के समक्ष, हजारों आदमियों के देखते देखते हिन्दुओं की प्यारी गौ डुबक डुबक करती करती जल में डूब जावे, उसकी नन्हीं सी बछिया किनारे पर बिलबिलाती खड़ी रहे और किसी से कुछ करते धरते न बन पड़े, भला इससे बढ़कर संताप क्या हो सकता है? यह अवसर उसे छुड़ाने के लिये लँगोट बाँधकर कूद पड़ते, यह शौक भी

कम नहीं थे परंतु पुष्कर जैसे पुण्य सरोवर मे मगर एक नहीं, सैंकड़ो, इससे भी अधिक हैं। जहाँ के मगर, घडि-याल नर-शरीर से, सिंहव्यालादि जैसे नरघाती भीषण जीवो को डरा देनेवाले मनुष्य से न डरकर उन्हे किनारे से खैंच ले जाने का हौसिला रखते हैं, जिनके मारे किनारे पर बैठ-कर स्नान कर लेने के सिवाय जल में घुसने तक का साहस नहीं होता, जल मे एक अदृष्ट पदार्थ को छुड़ाने के लिये पंडित जी को प्रवेश करने देना किसी को स्वीकार नहीं हुआ। बस इनके तैयार होते ही—"खबरदार! भीतर पैर रखा तो! गाय तो गई सो गई ही परंतु तुम्हारा भी कदापि पता नहीं लगेगा। अभी पाँच मिनट मे तुम्हारे टुकड़े टुकड़े करके खा जायगे। अकेले तुम्हारे शरीर पर दस बीस टूट पड़ेंगे" की चिल्लाहट मची। बस हताश होकर इन्हे रुक जाना पड़ा और सच पूछो तो प्रियंवदा की चार चूड़ियों के बल से ये अचानक रुक गए। यो ये रुके सही परंतु इन्होने रो दिया—

"हे भगवान्, आप तो एक बार गज की टेर सुनकर उसे ग्राह से बचाने के लिये, नंगे पैरो गरुड़ को छोड़कर दौड़े आए थे आज कहाँ हो? राम राम! बड़ा ही अधर्म है। इस भीषण दृश्य से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। ऐसी पुण्यभूमि मे ऐसा घोर अनर्थ! हाँ! अब मैं समझा! अब इसका कारण मेरे ध्यान मे आया। इस ब्रह्मद्रव मे निरंतर

निवास करके इन पामरों की ऐसे घोर पापों में प्रवृत्ति क्यों है ? क्या पुष्कर में रहकर भी इनके पाप नहीं छूटते हैं ? हाँ नहीं छूटते हैं। इसलिये नहीं छूटते कि ये मलयगिरि निवासिनी भिल्लिनियों के समान चंदनतरुशाखा को जलाने पर भी उसकी सुगंधि के रसास्वादन को नहीं जानते। वही स्तन के दूध को त्यागकर रक्त पान करनेवाली जलौका का सा ममला है। यदि हजार वर्ष तीर्थ सेवन करने पर भी किसी ने अपना मन न लगाया तो उस से सिर मारने से क्या लाभ ? परंतु क्यों जी गौडबोले महाशय ! इन तीर्थगुरु पुष्कर महाराज को भी ऐसा घोर कर्म स्वीकृत है ? बस हद हो गई ! हाँ इसलिये मंजूर हो सकता है कि यह गुरु हैं। लोगों को प्रत्यक्ष उदाहरण से दिखा रहे हैं कि पाप का यही प्रायश्चित्त है। पुण्य संचय का फल स्वर्ग और स्वर्ग में पहुँच जाने पर भी जिनके मनोविकार शमन न हों उनकी यह गति है। अच्छा ! होगा ! परन्तु जब हजारों लाखों यात्री यहां आते हैं, हजारों नर नारी यहां निवास करते हैं और सैकड़ों ही पशु पक्षियों को इसमें जल पान करना होता है तब सबकी रक्षा का तो कुछ उपाय होना चाहिए।"

"हां, बलवान, अजमेर के धार्मिक सज्जनों ने एक उपाय सोचा है। वे चाहते हैं कि इन समस्त घाटों के सामने लोहे की जालियां लगा दी जायँ ताकि मगर और घड़ियाल इनमें प्रवेश न कर सकें और लोग सुखपूर्वक स्नान कर सकें।"

"बेशक उपाय तो उत्तम है परंतु फिर "शुभस्य शीघ्रम्" इतनी देरी क्यों है ? यह कार्य तो ऐसा है कि जितना शीघ्र हो सके उतना ही अच्छा है। इसके लिये रुपयों का भी भार अधिक नहीं पड़ सकता क्योंकि साल भर मे कम से कम लाख डेढ़ लाख यात्री आते होंगे। यदि वे सुखपूर्वक इस कार्य के लिये चार चार आना भी डालें तो सहज मे हजारों रुपये इकट्ठे हो सकते हैं और इस शुभ अनुष्ठान के लिये देश के और भी सुपूत, माई के लाल मुख नहीं मोड़ेंगे।"

"वास्तव मे उद्योग का अभाव है। आपस की फूट से विलंब हो रहा है। अब आपके कहने से उन्हे फिर उकसाऊँगा। खूब परिश्रम करूँगा। सफलता परमेश्वर के हाथ है परंतु कार्य यदि सच्चे अंतःकरण से किया जायगा तो अवश्य सफलता हमारी चेरी है।"

"निःसंदेह! सच्चे अंतःकरण की प्रत्येक कार्य मे आवश्यकता है। अंत·करण लगाकर तीर्थ-सेवन न करने का जो फल ग्राह रूप से मिल रहा है वह आपने देख ही लिया।"

इस प्रकार बातें करते करते धरणीधर महाराज इन सब को लेकर देव-दर्शन के लिये वहाँ से रवाना हुए किंतु कोई सौ डेढ़ सौ कदम चलकर इन्होंने जब दो बालक सन्यासियों के दर्शन किए तब पंडित जी एकदम रुक गए।

प्रकरण—५६

पुष्कर में बालक साधु

गत प्रकरण के अंत में पुष्कर की कुंज से चलकर देव-दर्शन के लिये जाते हुए दो साधुओं को देखकर पंडित जी रुक गए थे। उनमें एक की वय १८ साल, गौर वर्ण, विस्तीर्ण ललाट, विशाल वक्षस्थल, गठा हुआ बदन, सिर की जटा कंधे तक लटकी हुई, शरीर पर भस्म रमाए हुए, लाल लाल आंखें और चेहरे से संयम का, तप का अथवा भजन का प्रभाव फूट फूटकर निकलता था। उसके मुख कमल की प्रतिभा देख देखकर अनायास बोध होता था कि यह ब्राह्मण शरीर है। इंद्रिय-दमन से सुप्राप्त कांति उसके शरीर पर सुचारु रूप से झलक रही थी। मुख पर दाढ़ी मोछ का नाम नहीं और न कानों में कुंडल अथवा छिदे हुए कान। गले में रुद्राक्ष का कंठा अलबत्ता था। कमर में मूंज की कोंदनी पर लँगोटी और हाथ में एक तुंबी के सिवाय उसके पास कोई वस्तु नहीं थी।

दूसरा साधु, साधु नहीं साधुनी अथवा संन्यासिनी थी। इसकी उमर तेरह साल, वही गौर वर्ण सुंदर, सुडौल और गोल चेहरा, वैसी ही आंखें। और सब बातें इस साधु से मिलती जुलती, यहां तक कि दोनों के चेहरे मोहरे को देखकर एक छोटा सा बालक भी अनायास कह उठे कि ये

दोनों माँ-जाए भाई बहन हैं। केवल दोनों मे यदि अंतर था तो इतना ही कि उसका पुरुष शरीर था और इसकी नारी देह। उसने केवल लँगोटी बाँधकर अपनी लज्जा निवारण कर ली थी और इसे अपना शरीर ढाँकने के लिये दस हाथ की साड़ी ओढ़नी पड़ी थी। साड़ी श्वेत नहीं, गेरुई नही, केवल भस्म से रँगी हुई खाकी। दोनो के दर्शन करने पर विचारवान् नर नारी अवश्य जान सकते थे कि शिव ब्रह्मादि को, नारदादि महर्षियों को नचानेवाले भगवान् पंचशायक का विश्वविमोहन वायु अभी तक इनके निकट नही पहुँचा है। दोनों के मुख पर भोलापन, शाति और विराग ने अपना डेरा डाल रखा था। दोनो हलवाई की दूकान के सामने बैठे हुए बिना तर-कारी, बिना अचार, बिना दही पूरियाँ खाते जाते थे और जो सज्जन उन्हे फिर लेने के लिये मनुहार कर रहा था उससे कहते जाते थे कि "बस अब नही! अब कुछ नही चाहिए। बहुत हो गया। छुट्टी हुई।" इनकी ऐसी निर्लोभता देखकर किसी ने पैसा दिया तो "नहीं," रुपया दिया तो "नही" और कपड़ा दिया तो "नही"। बस "नही" के सिवाय कुछ नही।

इन दोनों को सिर से पैर तक कई बार देखकर पंडित जी मोहित हो गए। कुछ इसलिए नही कि उनका रूप लावण्य उनके मन मे समा गया हो किंतु पंडित जी के अंतःकरण पर सचमुच ही उनका ऐसा प्रभाव पड़ा जैसा अभी तक किसी मनुष्य देहधारी का नहीं पड़ा था। इनकी आकृति, इनकी चेष्टा

और इनके मुखों का भाव स्पष्ट रूप से साक्षी दे रहा था कि "इनका ब्रह्मचर्य अखंड है, काम-विकार अब तक इनके पड़ोस आकर नहीं फटकने पाए। इस घोर कलिकाल में ये बातें एकदम असंभव हैं। भगवान् शंकराचार्य के अतिरिक्त अभी तक कलियुग में दुनिया के पर्दे पर कोई पैदा ही नहीं हुआ जिसने ब्रह्मचर्य के अनंतर गृहस्थाश्रम का, वानप्रस्थ का ग्रहण ही न कर एकदम संन्यास ले लिया हो।" पंडित जी के मन में ऐसे विचार होते ही उन्होंने इनके चरणों में प्रणाम करके पूछा—

"महाराज, यह भोग की बिरिया योग? असंभव को संभव? अनुमान होता है कि पूर्व जन्म के शुभ संस्कार हैं। तप का कोई भाग शेष रह गया है।"

"नहीं पिता! न हम तप जानते हैं और न योग। भगवान् की मर्जी। हमने जन्म लिया तब से इसके सिवाय कुछ देखा ही नहीं। जिस दशा में डाल दिया उसी में पड़े हैं और टुकड़े मांग खाते हैं। पिता की कभी सूरत देखना नसीब नहीं हुआ। छप्पन के अकाल में माता अन्न बिना बिलबिला बिलबिलाकर मर गई। इस बहन को उसने केवल हमारा पेट भरने के लिये एक बूढ़े से विवाह करके साठ रुपए लिए थे, तो भी उसकी बीमारी में कोई बदमाश चुरा ले गया। मसान में ज्वर से पीड़ित होकर वह बूढ़ा भी चल बसा। एक साधु ने हमको पाला पोसा था सो महाराज भिक्षा न

पाकर बासठ मे मर गए। शरीर बेशक हमारा ब्राह्मण का है पर'तु अब तो भिखारी है, दुनिया के टुकड़े ले रहे हैं। दूसरे चैाथे जब मिल जाय तब चना चबेना माँग खाते हैं श्रैार (दूर से दिखाकर) गुरू की गुफा मे पड़ रहते हैं।"

"आपके इस धैर्य को, आपकी इस धर्म-दृढ़ता को धन्य है। परतु महाराज, बाहर के कुसंस्कार से जब आपको काम बाधाएँ होंगी, भोग विलास की इच्छा होगी श्रैार लोग आपको लालच मे फँसावेगे तब ये बातें नही ठहरने पावेगी। इस लिये एक बार गृहस्थाश्रम करो श्रैार इस बाई की रक्षा करो। जमाना बहुत नाजुक है।

"हाँ होगा। पर'तु अब इच्छा नहीं। हाँ इच्छा विद्या पढ़ने की अवश्य है। कोई हमारे योग्य बातें सिखलानेवाला पंडित मिल जाय तो पढ़ेंगे जिससे रस्ते से चलकर साधना कर सकें।"

"अच्छा ऐसा ही विचार दृढ़ है तो हमारे गाँव मे चलो। वहाँ सब प्रबध हो सकेगा।"

"नही बाबा। गाँव मे जाकर दुनिया के माया जाल मे फँस जायँ तो किया कराया सब धूल मे मिल जाय। जो आपने कहा सो सब सच्चा हो जाय।"

'नहीं महाराज, डरिए मत। यहाँ आपको ललचानेवाले, बिगाड़नेवाले बहुत मिलेंगे किंतु वहाँ किसी की मजाल नही जो आपको सता सके। एक पहाड़ी पर एक छोटी सी गुफा

रहने को। बिलकुल एकांत वास। वहीं आपके पास भिक्षा पहुँच जायगी और गौड़बोले महाशय आप दोनों को पढ़ा आया करेंगे। आपकी इच्छा न हो तो आप बस्ती में न आना।"

"अच्छा बाबा!" कहकर दोनों इनके साथ हुए और ये लोग भी देव-दर्शन को रवाना हो गए किंतु एक बात पंडित जी के हृदय में समाई नहीं। हजार रोकने पर भी उनसे गौडबोले को सुनाकर मन का बोझा हलका किए बिना न रहा गया। वह रो रोकर आँसू पोंछते हुए, हिचकियाँ भर भर-कर फिर रुक जाते और फिर कहते हुए गौडबोले को इस तरह सुनाने लगे—

"ओहो! देश की कैसी दुर्दशा है! भला यह लड़की केवल पेट भरने के लिये, साठ ही रुपये में बूढ़े को न बेच दी जाती तो विधवा क्यों होती? हाय! उन रुपयों की भी, ऐसा पाप कर्म करके केवल पेट भरने के लिये कमाए हुए रुपयों की चोरी? हाय बिचारे नन्हे नन्हें बालकों को छोड़कर भूख की आग में माता का जल मरना घोर अनर्थ है। बस हद हो गई! जिस देश में ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं उसमें, अभी बालक साधुओं की ही भिक्षा बंद करके हमारा सुधारक समुदाय विलायत की नकल करना चाहता है। विलायत में भीख माँगनेवाला सजा पाता है और इस भय से वे लोग जब परिश्रम से पेट भर सकते हैं तब वहाँ की प्रजा अकर्मण्य नहीं होने पाती। यह सत्य है किंतु वह धनाढ्य देश है।

वहाँ जीविका के हजार रस्ते हैं किंतु जिस देश की प्रजा नितांत दरिद्री है वहाँ जीविका के मार्ग खोलने से पहले भीख बंद ? बेशक इस यात्रा के अनुभव ने निश्चय करा दिया कि साधु समुदाय मे यदि घुरहू जैसे अनेक नर-पिशाच हैं तो वरुणा गुफावाले महात्मा जैसे सच्चे साधु भी कम नही हैं। यदि हिसाब लगाकर देखा जाय तो अधिकांश ऐसे निकलेगे जो अन्न न मिलने से फकीर बन गए हैं अथवा इच्छा न होने पर भी झख मारकर उन्हें बनना पड़ा है। यदि अब भी भीख बंद करने के लिये कानून बनाकर कृतज्ञता के ख्याली पुलाव पकाने की इच्छा रखनेवाले इसके बदले तीर्थ स्थानों मे काशी और हरिद्वार, हृषीकेश के समान सत्र खोलने का उद्योग करें, भिखारियों को समझाकर किसी न किसी प्रकार की उप-जीविका मे प्रवृत्त किया जाय तो आधे से अधिक निकल जायँगे। जो अंगहीन, शक्तिहीन, अपाहिज कोढ़ी हैं वे अलग निकल सकते हैं। उनकी रक्षा का स्वतंत्र प्रबंध किया जाय और तब जो निकम्मे, अकर्मण्य अथवा वास्तव मे जिनका समाज पर बोझा है उनके लिये उचित रूप पर दबाव न डाल कर कानून का बोझा भी डाला जाय तो अनुचित नहीं। उनको कोई कार्य करने से पहले यह अवश्य सोच लेना चाहिए कि वे उस देश के वकील बनने चले हैं जिसमे केवल एक ही फसल मारी जाने पर लाखों आदमी गवर्मेंट की कृपा के भरोसे अकालमोचन के कामो पर टूट पड़ते हैं।

फिर बालक साधुओं की यदि भिक्षा बंद की जायगी तो इन जैसे निरपराधी भी सताए जायँगे। ऐसे ऐसे झख मारकर पाप कर्म मे प्रवृत्त होंगे। इन दोनों ने दिखला दिया कि यदि तलाश की जाय तो इस घोर कलियुग मे ध्रुव के समान साधु आज भी मिल सकते हैं। जरा सोचकर—" इतना कहते कहते पंडित जी का गला रुँध गया। वह आगे कुछ न कह सके और इसी अर्से मे पितामह ब्रह्मा जी के मंदिर मे आरती का टकोरा होते ही "जय जय जय! भगवान् ब्रह्मदेव की जय!!" कहते हुए सब के सब मंदिर के भीतर प्रवेश कर दर्शन का आनंद लूटने लगे। पंडितजी ने विनय की—

"भगवन्, आप देवताओं से लेकर चिउँटी तक के पितामह हैं। जब सृष्टि ही आप से है, जब उसके रचयिता ही आप हैं तब आपको पितामह कहना कौन बड़ी बात हुई। ब्रह्मा, विष्णु और महेश, भगवान् जगदीश्वर के तीन रूप हैं। उत्पन्न करने के समय ब्रह्मा, पालन करती बार विष्णु और संहार करने मे महेश—परंतु जब उत्पत्ति ही न हो तब पालन किसका और इसलिये इस त्रिमूर्ति मे आपका प्रथम आसन है। यह समष्टि संसार की समष्टि स्थिति के समष्टि विभाग हैं। अच्छा पितामह, यदि हम दुनियादारी का विचार करे तब भी उत्पत्तिकर्त्री माता का पिता से अधिक आदर है। तब प्रभु! यह तो दास को बतलाओ कि भगवन्, आप उस ग्वाल के छोकरे से कैसे हार गए। नहीं महाराज, यह भी आपकी

लीला है। "गोविंद की गति गोविंद जाने।" हम पापी जीव क्या जानें कि कौन हारा और कौन जीता। आप यदि कृष्ण के भक्त हैं तब भी वही हारे क्योकि भक्तों के भगवान् सदा कनौड़े रहते हैं, आप यदि दादा हैं तब भो वही। अस्तु आप सब प्रकार से सुर-श्रेष्ठ है। मेरे इष्टदेव के इष्टदेव हैं क्योकि मैं लघुमति से नहीं जान सकता कि तीनो मे से कौन बड़ा और कौन छोटा? मेरे लिये तीनों समान, तीनो एक और तीनों मे से प्रत्येक मे तीनो के दर्शन होते हैं। संसार की व्यवस्था के लिये नाम तीन हैं किंतु हैं तीनों ही एक। हे प्रभु! रक्षा करो। मुझे भगवान् की अविचल, अव्यभिचारिणी भक्ति प्रदान करो। मैं आपकी अनंत सृष्टि मे एक कीटानुकीट हूँ, पापी हूँ, अपराधी हूँ। रक्षा करो नाथ! रक्षा करो!!" बस इस तरह कहते कहते पंडित जी गद्‌गद्‌ हो गए, उनके नेत्रों से अश्रुधारा का प्रवाह होने लगा और थोड़ी देर के लिये उनका देहाभिमान जाता रहा।

ऐसे दर्शन करके प्रसन्न होकर जब ये लोग मंदिर से लौटे तब गौड़बोले ने एक प्रश्न छेड़ दिया। इन्होने पूछा कि क्यों पंडितजी, ब्रह्माजी के मदिर अन्यत्र क्यो नहीं हैं? और देवताओं के एक एक जगह दस वीस मिलेंगे, अधिक मौजूद हैं फिर इनका केवल यहीं क्यो?"

"शास्त्र की सम्मति इसमे कुछ भी हो। जो कुछ है उसे आप भी जानते हैं और थोडा बहुत मैं भी। परंतु मेरी समझ मे

बस इस समय भी उनकी वही दशा हुई। केवल उनकी ही क्यों साथ मे गौड़बोले भी आज विह्वल हैं। उनकी आँखें पानी बहा रही हैं, उनके रोमांच हो रहे हैं और सचमुच वे माता के ध्यान मे मग्न हैं। जब इन दोनों ने अपने आपे को सँभाला तब सब के सब सावित्री के दर्शनकर तीर्थगुरू पुष्कर के घाटो का निरीक्षण करते हुए मन ही मन प्रमुदित होते तॉगों और इक्कों मे सवार होते हुए पुष्करराज को प्रणाम करके वहॉ से विदा हुए। यहॉ इतना लिखने की और आवश्यकता रह गई कि पुष्कर के भिखारी और जगह से भी दो हाथ बढ़कर हैं। वे यदि गाड़ो मे सवार होते ही यात्रियों का पिंड छोड़ देते हैं तो पुष्करवाले गाडी इक्कों के आगे खड़े हो जाते हैं और जब तक पैसा नहीं पा लेते यात्रियों की सवारी के साथ मीलो तक दौड़े जाते हैं। अस्तु ये लोग उनको दे दिलाकर उन दोनो साधु बालको को साथ लिए हुए वहॉ से चल दिए और इनके ग्राम मे पहुँचने तक कोई घटना ऐसी नहीं हुई जो यहॉ उल्लेख करने योग्य हो। हॉ। जिस समय इनके आने की खबर मिली बस्ती के सैकड़ो नर नारी बाजे गाजे के साथ इन्हे लिवा ले गए और "आगए! आगए!" की आनंद ध्वनि के साथ सब लोगों ने इनका स्वागत किया।

प्रकरण—५७

घुरहू की कुकर्म कहानी

"रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारे.
पारं गमिष्यति यतो भव सागरस्य ।
पुत्राः कलत्रमितरे नहि ते सहायाः
सर्वं विलोकय सखे मृगतृष्णिकाभम् ॥ १ ॥
अहह जन्म गतं च वृथा मम न यजनं भजनं च कृतं हरेः ।
न गुरुपादसरोरुहपूजनं प्रति दिन जठरस्य विपोषणम ॥ २ ॥

"स्वस्ति श्री सकलसद्गुणमार्ह, भगवद्भक्ति-परायण, पाण्डि-त्याद्यनेकगुण-मंडित, पंडित-मंडली-भूषण, श्रीमत्प्रीतिपात्र, श्रद्धेय पंडित श्री ५ प्रियानाथ जी महाशय योग्य ब्रह्मरूप निकट वर्तिनी, भगवान् शंकरप्रिया वाराणसी से कोटानुकोट, अकिंचन दीनबंधु का प्रणामाशीर्वाद । श च । जब से आपने गया श्राद्धादि का सविधि सम्पादन कर भगवच्चरण सरोरुहों के दर्शनों से अपने नेत्रों को सफल और सुफल करने के लिये श्री जगदीशपुरी को प्रस्थान किया आपका मंगल संवाद प्राप्त नहीं हुआ । निश्चय नहीं है कि आप वहां कब तक निवास करेंगे और दक्षिण यात्रा का आपने किस प्रकार क्रम स्थिर किया है । अस्तु ! कितनी ही आवश्यक बातें ऐसी हैं

जिनकी सूचना आपको जितनी शीघ्र मिल जाय उतना ही आपको अधिक संतोष होगा।

"प्रधान वक्तव्य यही है कि उस घुरहू नामधारी नर पिशाच को अपनी करनी का फल मिल गया। परमेश्वर यहाँ का यहाँ वर्त्तमान है। अब उसे आजीवन भारतवर्ष की पुण्यभूमि का दर्शन न मिलेगा। ऐसे नराधमो से देश जितना शून्य हो उतना ही कल्याण है। उसने अपने यावत् अपराध अपने ही मुख से स्वीकार कर लिए। जो घटनाएँ मुझे नसीरन रंडी के द्वारा विदित हुई थी वे लगभग सब की सब सत्य निकलीं। उसके साथ उसके पतवारू, कतवारू और नसीरन को भी दंड मिल गया। खूब छान बीन के अनंतर कल्पना नगरी के न्याया-लय ने दूध का दूध और पानी का पानी न्याय कर दिया।

"आप बाबा भगवानदास से कह दीजिए कि अब उसे चिंता करने की आवश्यकता नहीं रही। उसका जैसा विमल चरित्र है वैसा भगवान् सबको दे। निरपराध भगवानदास जिस मिथ्या कलंक से भयभीत होकर दिन रात कुढा करता था उसका कर्ता घुरहू साबित हुआ। प्रयाग मे आप लोगो ने जिस साधु की मुश्कें कसते हुए अवलोकन किया था वह घुरहू ही था। वहाँ सिपाहियो के पहरे मे से भाग आया था किंतु अंत मे उसकी कलई खुल गई। उस नन्हे से बालक का केवल जेवर के लालच से गला घोटकर प्राण लेनेवाला घुरहू है। भगवानदास ने उसका सत्कार करके अपनी थैली क्या

खोई मानों काषाय वस्त्र पर कलंक लग गया। उसका आतिथ्य करना सचमुच साँप को दूध पिलाना था। उस दुष्ट ने ऐसा घोर पाप करके संन्यासाश्रम से लोगों का विश्वास उठा दिया।

"वह वास्तव मे नृशंस है, कृतघ्न है और घोर पापी है। उसने जिस हाँडी में खाया उसी मे छेद करना चाहा। यदि साध्वी प्रियंवदा उसका पुत्रवत् पालन करके उसका मैला, कुचैला उठाने मे घृणा करती तो वह विष्ठा मे लिपट लिपट-कर अन्न जल बिना बिलबिला बिलबिलाकर तड़प तड़पकर कभी का मर जाता किंतु उसको जब माता पर हाथ पसारते हुए लज्जा न आई तब वह अवश्य नीचातिनीच है, पशु पक्षियों से भी गया बीता है। उसने स्वयं स्वीकार कर लिया कि—

"मेरी आँख प्रियवदा पर वचपन से ही थी। जिस समय वह जननी बनकर प्लेग की घोर पीडा के समय मेरा पुत्र की तरह पालन पोपण करती थी उस समय भी मैं उसे बुरी नजर से देखता था। दो एक बार मैंने अपनी पाप वासना तृप्त करने के लिये खोटी चेष्टा से, खोटा प्रस्ताव करके उसे छेडा भी परन्तु जब उसका रुख न देखा तब सन्निपातवाले रोगी की नाई वाही तवाही बककर उसका संदेह निवृत्त कर दिया। उसके ऐसे मातृभाव का बुरा बदला देकर दीन दुनिया से भ्रष्ट हो जानेवाला मैं हूँ। वैसे ही रेल-पथ मे एक बार

जनानी गाड़ी मे और दूसरी बार प्रयाग स्टेशन पर उसे छेड़कर हँसा देनेवाला भी मैं ही हूँ।

'आपको शायद विश्वास न होगा कि जब प्रियंवदा ने इतने दिन मातृभाव से मेरी सेवा की थी तब उसने मुझे रेल-गाडी मे, प्रयाग स्टेशन पर और अंत मे नौका मे पहचाना क्यों नहीं ? इसमे उस विचारी का कुछ दोष नहीं। वह तो वह किंतु यदि मैं भेष बदल लूँ तो मेरे माता पिता, मेरी स्त्री और देवता तक मुझे नहीं पहचान सकते। मैं केवल भेष ही नही बदलता हूँ किंतु भाव बदलने का, आकृति बदलने का और बोली बदलने का मुझे अच्छा अभ्यास है। मैंने इस काम के लिये सामान इकट्ठा करने मे हजारों रुपए फूँक डाले हैं, बड़े बडे उस्तादो की ठोकरे खाई हैं। इससे आप समझ सकते हैं कि प्रियंवदा के बचपन मे जब मैं उससे उसके मैके पर मिला करता था तब और था, प्लेग के संकट से जिस समय उसने मेरे प्राण बचाए तब और, रेल मे मैंने जब उससे छेड छाड की तब और, और नाव मे मैं दिखलाई दिया तब और, किंतु जब मैं पकडा गया तब उसने मुझे पहचान लिया था।

'रेल-यात्रा मे जब वह मेरी मीठी मीठी बातों से काबू मे आती दिखलाई न दी तब अवश्य मैंने उसे बचपन की झलक दिखला दी थी। उसके हँस कर, रोते रोते मुसकुराकर "निपूता यहाँ भी आ मरा।" कह देने का भी यही कारण था। आप शायद पूछेंगे कि बचपन की ऐसी कौन सी बात

थी जिसके स्मरण होते ही दुःख के समय भी, भय की बिरियाँ भी प्रियवदा हँस पड़ो। उसके पति को यह भेद मालूम होगा तब ही उन्होंने मेरे ऐसा अनुचित बर्ताव करने पर भी हँसकर टाल दिया नहीं तो वे अवश्य मुझे प्रयाग के स्टेशन पर पीटे बिना न छोड़ते। कांतामाथ को मेरी हरकत अवश्य बुरी लगी थी। तब ही उन्होने मेरी लातो और घूँसों से खबर ले डाली। उनकी लाते और घूँसे अब तक कसकते हैं। उनके चेहरे के भाव से स्पष्ट होता था कि उन्हे प्रियंवदा के हँसने से उस पर सदेह हो गया है।

'अच्छा आप यह पूछेंगे कि वह बचपन की कौन सी वात थी जिसे सुनते ही प्रियवदा हँस उठी। बात कुछ नहीं थी। कुछ बात हो तो कहूँ। बात यही थी—"मोरी मे का बेर।" आप शायद इससे यह समझ बैठें कि उसने कभी मोरी मे से उठाकर बेर खा लिया होगा। नहीं! सो बात नहीं थी। वह जन्म से ऐसे घर मे पली थी कि यदि उसके माता पिता को इस प्रकार का झूठा भी संदेह हो जाय तो वे उसे गोमूत्र पिलाते पिलाते और गोवर खिलाते खिलाते अधमरी कर डाले।

'बात इस तरह पर थी कि जिस समय मेरी उमर तेरह चौदह वर्ष की और उसकी सात आठ वर्ष की होगी, मैं अपने पिता के साथ उसके गाँव मे सात आठ महीने रहा था। हम दोनों के घर एक दूसरे से बिलकुल सटे हुए थे और हजार मुझे पिताजी मारते पीटते परंतु मुझे आवारा भटकने के

सिवाय पढ़ने लिखने से कुछ मतलब नहीं था। बुरी संगत मे बैठने से मेरी नियत खराब हो गई थी और उसी कच्ची उमर मे चाहने लगा था कि मैं प्रियंवदा को अपनी प्राणप्यारी बनाऊँ! परंतु जाति-भेद के कारण, और मेरे दुराचार से यह बात एकदम असंभव थी। बस इसी लिये उस कच्ची कोपल को ही तोड़ खाने का मैंने इरादा किया। इस इरादे से मैं उसे छेड़ा करता था, उसके साथ बुरी बुरी चेष्टाएँ करता था और बुरे बुरे प्रस्ताव करता था परतु वह केवल सात आठ वर्ष की बालिका क्या जाने कि मेरा क्या मतलब है। आजकल सात आठ वर्ष की लड़कियाँ भी खोटी संगति मे रहकर सुनने सुनाने से, देखने भालने से बहुत कुछ जान जाती हैं और गालियो का पाठ पढाकर अपढ स्त्रियाँ उन्हे सब बातो मे पहले से होशियार कर देती हैं किंतु उस तक इसकी हवा भी नही पहुँची थी। जब मैं उसे छेड़ता तो वह अपने भोलेपन से या तो हँस दिया करती थी या बहुत हुआ तो निपूते, निगोड़े और मुए की गाली देकर, पत्थर मार-कर भाग जाती थी। किंतु ऐसे गाली और पत्थर खाने ही मे मुझे आनंद था।

'हाँ! तो "मोरी मे के बेर" की घटना इस तरह पर हुई कि एक दिन उसके पिता ने पेंसिल खरीदने के लिये उसे पैसा दिया। बालिका तो थी ही, पैसे को आँचल से बाँधने की जगह वह उसे उछालती उछालती जाने लगी। पैसा सयोग

से मोरी मे गिर गया। मोरी मे पड़ा हुआ पैसा वह कदापि न उठाती परंतु इधर उधर अच्छी जगह मे गिर गया हो तो उठा लूँ, इस इच्छा से जब वह उसे आँखे फाड़कर ढूँढ़ रही थी तब ही मैं वहाँ आ पहुँचा। मैं उसे अकेली पाकर "जान साहब" कह दिया करता था और वह भी इसका मतलब न जानकर नाराज होने के बदले हँस दिया करती थी। उस दिन जब उससे मैंने ऐसा कहा तो उसने "अथ" से लेकर "इति" तक सारा किस्सा सुनाने के अनंतर "भैया तू भी ढूँढ़" कहकर रो दिया। मैंने उसे दिलासा देकर गोदी मे उठाया, अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछे और "जान साहब रोओ मत। पैसा गया तो तुम्हारे लिये रुपया हाजिर है।" कहते हुए जेब मे से रुपया निकालकर उसे देते हुए ज्योंही मैंने उसके गालों का चुंबन करने के लिये मुँह फैलाया त्योंही वह मेरी गोदी मे से छटककर भागी और यह कहती हुई भागी कि "निपूता यहाँ भी आ मरा।" बस इससे मैंने समझ लिया कि यदि यह अपने घरवालो को खबर दे देगी और इस बात को मेरे पिता जान जायँगे तो पिटते पिटते मेरी जान निकल जायगी। मैं झूठी बातें बनाकर अपना बचाव कर लेने मे उस्ताद हूँ। बस इसी समय मैंने उससे कह दिया कि मोरी मे से बेर उठाकर यह खा रही थी, मैंने इसे पकड़-कर छीन लिया। बस इसी लिये पिटने के डर से मुझ पर इलजाम लगाती है। वास्तव मे वह माता पिता की मार

से बहुत डरती थी। इस कारण उसने अपने घरवालो से सब हाल छिपाया। मुझे इस बहाने से उसे छेड़कर राजी करने का अच्छा मौका मिल गया। "मोरी मे का बेर" कहकर मेरी देखा देखी और भी लडके लडकी उसे चिढाने लगे और यो उसकी चिढ पड़ गई।

'अब मैं अपने किए पर बहुत पछताता हूँ और यदि सरकार मानकर मुझको इस वार क्षमा कर दे तो आगे से कुकर्म न करने की कसम भी खाता हूँ ...,"

* * * * * * * * * * * *

पंडित दीनबंधु के पत्र मे इस प्रकार की बाते पढकर कातानाथ बहुत ही अपने मन मे लज्जित हुए। एक साध्वी पतिव्रता माता समान भाभी के निष्कलंक होने पर उसके चरित्र पर सदेह करने पर वह पछताए और प्रियवदा के चरणों मे सिर रखकर उन्होने वारंवार क्षमा माँगी। "अंत भला सो भला।" कहकर प्रियवदा ने देवर को सतुष्ट किया और यो उसके चित्त मे जो एक मिथ्याभिशाप की चिता की आग सुलगा करती थी वह दीनबंधु के पत्र से बुझ गई। उसने रात्रि के समय प्राणनाथ के चरण चापते चापते उनका चित्त प्रसन्न देखकर यह सारा प्रसंग सुनाने के अनंतर हँस-कर उनसे कहा—

" नाथ, अब मेरे जी मे जी आया। अब जीकर आपके चरण कमलों की सेवा करना सार्थक है। यद्यपि आपने

कई बार मुझे संतुष्ट भी कर दिया था और आपने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि आप मुझे निर्दोष समझते हैं परंतु जब तक छोटे भैया का संदेह न निकले, मेरा दुख दूर नही होता था, मुझे दिन रात कल नही पड़ती थी।"

"हॉं बेशक! ऐसा ही है। चलो अच्छा हुआ। उसका भी सदेह निकल गया।"

"जी हॉं! उनका सदेह तो निकल गया परंतु आपने बनारस मे ही सब के सामने इस बात को प्रकाशित क्यो न कर दिया? यहॉं तक कि आपने प्रकाशित न करने का कारण भी न कहा। क्या मुझे चिढ़ाने के लिये?

"नही! तुझे चिढ़ाने के लिये नही! केवल इसलिये कि यदि यह बात अपराधी के मुँह से प्रकाशित हो तो अधिक अच्छा!"

"अच्छा! अब मैं समझो! परंतु अच्छा हुआ उस दुष्ट को भी सजा मिल गई। ऐसे पामर को फॉंसी पर लटकाना चाहिए था।"

"हॉं जैसा करता है वैसा पा लेता है। अब हमे क्या मतलब! और मेरी समझ मे जन्म भर दुःख पाना फॉंसी से भी बढकर सजा है। वकीलों की दलील ने कानूनी बारीकी से उसे बचा लिया।"

"कानूनी बारीकी क्या?"

"और अपराध तो उसके प्राणदंड देने योग्य थे ही नहीं। उस बच्चे को मारने का अपराध था। उसमे उसका इरादा साबित न हुआ होगा। बस यही कानूनी बारीकी।"

"खैर, हो गया। गया दुष्ट काले पानी।"

'कहीं जावे। भगवान् अब भी उसे क्षमा करे। यातनाएँ भोगने से वह सँभले और फिर कभी ऐसे पापों मे प्रवृत्त न हो। सब के भले मे अपना भला है।"

'हाँ बेशक शत्रु पर दया करनी ही सच्चा हिंदूपन है।"

इस तरह बातें करते करते दोनो सो रहे।

प्रकरण—५८

राग में विराग

अनेक मास तक भक्तिपूर्वक भारत के अनेक तीर्थ स्थलों मे विचरकर दुनिया का अनुभव और परमेश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के अनंतर पंडित जी घर आ गए हैं। यात्रा का फल भी इन्हे अच्छा मिल गया। प्रियंवदा की मनोकामना पूर्ण हो गई। भगवान् ने उसको पुत्र प्रदान किया। सुखदा के भी गिरते गिरते सँभल जाने पर, उसके पश्चात्ताप से, उसके अटल व्रत ने और उसके प्रायश्चित्त ने पितृपिंड का भक्षण करने के केवल एक मास के भीतर ही भीतर शुभाशा का बीजारोपण कर दिया। वीज से अंकुर, अंकुर से वृक्ष और वृक्ष मे पुष्प लगकर फल भी उसे मिल गया। फल भी ऐसा वैसा नहीं। मधुर फल। प्रियवदा के कमलानाथ और सुखदा के इंदिरानाथ के जन्म होने मे केवल तीन मास सत्रह दिन का अंतर था। पंडित प्रियानाथ जो ही घर मे कर्त्ता धर्त्ता और वह दृढ़ सनातन धर्मावलंबी। गौड़वोले ने जब शुभ संतान होने का भार उन पर डाल दिया और जब उनका सिद्धांत ही यह था कि संस्कारहीन वालक किसी काम के नही होते, उनके पैदा होने से न होना अच्छा है, वे सचमुच अपने पुरखाओं को तारने के वदले स्वयं नरक मे

पड़कर उन्हे भी धर घसीटते हैं, तब दोनों बालको के लिये सीमंत, पुंसवन आदि सस्कार यदि ठीक समय पर शास्त्रविधि से किए गए हों तो आश्चर्य क्या ? यों संस्कार सब ही किए गए और सो भी आडंवरशून्य क्योंकि पंडित जी को दिखावट पसंद नहीं, बनावट पसंद नहीं। केवल शास्त्रीय संस्कार ही नहीं वरन् उनकी इच्छा थी कि गर्भधारण करने के समय दपती के शुद्ध चित्त हों, उनके मन मे विकार न हों, शरीर मे दैहिक, दैविक और भौतिक विकार न हो। गर्भधारण करने के समय से स्त्री की इन सब बातो से रक्षा की जाय। वह सदा प्रसन्न बदन, प्रसन्न मन रहे, कोयले, राख, खपरे और अखाद्य पदार्थों का सेवन न करने पावे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय और शोकादि विकारों से रहित रहे तो अवश्य ही संतान उत्तम होगी। पैदा होने के समय से बालक के अंत:करण मे खोटे संस्कार न पैदा होने देने चाहिएँ। पडित जी ने प्रियंवदा को अच्छी तरह समझा दिया, कांतानाथ को अमुक अमुक ग्रंथो का अवलोकन करने का संकेत कर दिया और कुछ पति से और कुछ जीजी से सुखदा ने भी जान लिया।

बस इन बातों के पालन करने का फल यह हुआ कि दोनों बालक रूप, गुण सपन्न पैदा हुए। अब सुखदा प्रियंवदा को जीजी कहकर पुकारती है और वह उसे कभी बहन, कभी छोटी और कभी बहुत प्यार में आ जाती है तो सुखदिया

कह देती है। दोनों मे सगी बहनों से भी बढ़कर प्रेम है। यों मूर्ख, लडाकू और कलहिनी स्त्रियाँ लड़ाई मोल ले लेकर आपस मे उलझ पड़ती हैं। हवा से लड़ने लगती है। सुखदा भी पहले इन बातों के लिये सरनाम थी। परंतु अब इनमे न पैसे के लिये लडाई है, न बालकों के लिये लड़ाई है और न काम काज के लिये। काम काज करने के लिये "मै करूँगी। मैं करूँगी" की कभी प्रेमपूर्वक उलझन हो जाय तो जुदी बात है किंतु सब अपना अपना काम पहले से कर लेती हैं। अपना करके दूसरी का भी करने दौड़ती हैं। "रुपए पैसे और खर्च की बात आदमी जानें। हमे कुछ मतलब नहीं। जो काम हमारे जिम्मे के हैं उनका ही निपटना कठिन है।" यही दोनों की राय है। अब काम से अवकाश निकालकर सुखदा जीजी से पढ़ना लिखना सीखती है, सीना पिरोना सीखती है और दस्तकारी के अनेक काम सीखती है। बालको के पालन पोषण मे नौकर नौक-रानियों तक को यह मालूम नहीं होने पाता कि कौन किसका बच्चा है। उन बच्चो मे भी न मालूम क्यों नैसर्गिक प्रेम है। दोनों खाते साथ है, सोते साथ हैं, जागते साथ हैं, रोते साथ हैं और दूध पीने का भी उनका एक विचित्र ढंग है। एक बच्चा जब एक घूँट पी लेता है तब दूसरे की ओर इशारा करता है। हजार कोशिश करो किंतु जब तक दूसरा एक घूँट न पी ले तब तक वह कटोरी मुँह को छूने तक नहीं देता।

उनका ऐसा प्रेम देखकर पंडित पंडितायिन मे कुछ हँसी भी होती है। उनकी सख्त ताकीद है कि कभी कोई काम ऐसा न करो जिससे बालक चिड़चिड़ा हो जाय। खबरदार किसी ने डरने की, झूठ बोलने की और इस तरह की बुरी आदत डाली तो! रात को यदि उन्हे पेशाब पायखाने की बाधा हुई तो रो रोकर माता को जगा देगे परंतु कपड़े बिगाड़ने का वास्ता नही। मैले कुचैले से उन्हे बचपन से ही घृणा है। दोनों बच्चे ज्यों ज्यों बड़े होते जाते हैं त्यो त्यों शक्ति के अनुसार शारीरिक परि-श्रम की उनमे आदत डाली जाती है। अब वे खूब दौड़ धूप करते है, वर्जिश करते हैं, गेद बल्ले खेलते हैं और धीरे धीरे बलिष्ट, हृष्ट पुष्ट और सदाचारी, माता पिता के भक्त बनते जाते हैं। शिष्टो का सत्कार, समान से प्रेम और छोटो पर दया उन्हे सिखलाई जाती है। नित्य प्रात:स्मरण करना, परमेश्वर की भक्ति करना उनके कोमल अंत:करण मे ठेठ से ही अंकित कर दिया गया है। जब से उनका उपवीत हो गया है स्नान संध्या उनका प्रधान कर्तव्य है। उनकी मजाल नही जो इन कामो मे अतिकाल कर दें। पंडित जी को मारने पीटने से पूरी पूरी घृणा है इसलिये कोई उन पर हाथ नहीं उठाने पाता परतु इसका यह मतलब नही कि वे दुलार मे आकर बिगड जायँ। शिष्टों का नाराज होना ही उनके लिये भारी भय है।

उनकी शिक्षा दीक्षा का कार्य गौड़बोले के सिपुर्द है। पंडित जी ने उनको हिदायत कर दी है कि आवश्यकता और

समय के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन भले ही कर दिया जाय पर'तु बालकों को उसी ढंग की शिक्षा मिलनी चाहिए जैसी "हिंदू गृहस्थ" मे हरसहाय को दी गई है। जब तक विश्वविद्यालय की शिक्षा-प्रणाली का उचित संशोधन न हो जाय तब तक पास का पुछल्ला लगाना वह चाहे अनावश्यक, निरर्थक, निकम्मा, हानिकारक और बोझा ही क्यों न समझें किंतु जब आजकल परीक्षा के बिना योग्यता की नाप नहीं होती और हर जगह सार्टिफिकेट रूपी लकडी की तलवार अपेक्षित होती है तब स्कूल और कालेज की शिक्षा दिलाए बिना काम न चलेगा। इस बात को पंडित जी अच्छी तरह जानते हैं किंतु "हिंदू गृहस्थ" के अनुसार बालक को सदा-चारी, धार्मिक और कार्यकुशल बनाने के लिये, कमाऊ पूत बनाने के लिये जिन बातों की आवश्यकता है उन्हे पहले घर पर सिखा पढ़ाकर तैयार कर देना चाहिए। इसी उद्देश्य से पंडित जी ने दोनों बालको को पहले घर पर शिक्षा दिलाई और फिर परीक्षा दिलाकर डिगरियाँ दिलाईं।

इस तरह तैयार होकर क्योकर बड़े कमलानाथ और छोटे इ'दिरानाथ परमेश्वर की भक्ति मे, माता पिता की सेवा करने में, कुटु'ब का पालन करने मे और लोकोपकार मे प्रवृत्त हुए, कब और किस तरह से कहाँ किस किस के साथ उनके विवाह हुए और कैसे उन्होंने दुनिया की नीच ऊँच देखकर अनुभव प्राप्त किया, सो नमूना खड़ा कर देना एक जुदे उप-

न्यास का विषय है। मैं नहीं कह सकता कि इस बात का यश किसे मिलेगा। हाँ साहित्य का मैदान तैयार है और लेखनी के घोड़ों की बाग भी ईश्वर की कृपा से अब एक नहीं, अनेक लेखको के हाथ मे है। यदि इस कार्य मे किसी को सफलता का यश लेना हो तो कल्पना के भरोसे अच्छी खासी "राम लक्ष्मण की जोडी" तैयार हो सकती है, वाल्मीकीय रामायण के से मर्यादापुरुषोत्तम नहीं क्योकि उसमे कल्पना का लेश नहीं, वह उपन्यास नहीं इतिहास है। रामलीला के से राम लक्ष्मण नहीं क्योंकि उसमे भगवान् के चरित्रों की छाया है किंतु आजकल के समय के अनुसार दो भाइयो की जोडी, सज्जनो की जोड़ी, धार्मिको की, लोकोपकारको की जोड़ी की कथा कही जा सकती है।

अस्तु! यहाँ इतना अवश्य लिखना चाहिए कि अपनी योग्य संतानों को निरखकर पंडित, पंडितायिन, कांतानाथ और सुखदा राग मे प्रवृत्त नहीं हो गए हैं। कांतानाथ जब छोटे भाई और सुखदा जब छोटी बहू है तब उन्हे औरो के आगे हिंदू गृहस्थों की प्राचीन परिपाटी के अनुसार प्रेम विह्वल हो जाने का अवसर ही क्यो मिलने लगा! दंपती जब अकेले होते हैं तब आपस मे आमोद प्रमोद की बातें करते हैं, हँसी दिल्लगी करते हैं और अपने लडके का प्यार भी करते हैं किंतु भाई भौजाई के समक्ष नहीं, बड़े बूढ़ो के सामने नहीं। कभी बालक का हँसना बोलना देखकर भौजाई के सामने कांता-

नाथ की कली कली खिल उठती है। रोकते रोकते वे मुस-कुरा भी उठते हैं परंतु प्रियंवदा से चार नजरे होते ही शर्मा-कर भाग जाते हैं और यदि विनोद मे विनोद बढ़ाने के लिये हँसकर उसने बुलाया भी तो "भाभी तुम भी लड़के से हँसी करती हो। तुम माता के बराबर हो। तुम्हे ऐसी हँसी शोभा नही देती।" कहकर आखे झुका लेते हैं। बस इस तरह की लज्जा से हिंदू गृहस्थ का आनद है, इसमें भले घर की शोभा है। कुछ इससे बड़ाई नही कि बड़ो के सामने, "बेटा, मुन्ना, लाला, राजा।" कहकर बालक के गालों का चुंबन करे, पति पत्नी हँस हँसकर आपस मे बाते करे।

खैर। प्रियंवदा एक साथ दो दो बालकों को निरखकर यदि आनद मे, सुख मे मग्न है, यदि वह फूले अंग नही समाती है तो अच्छी बात है। भगवान् ने उसे अतीव अनुग्रह करके वर्षों तक राह तकते तकते ऐसा सुख प्रदान किया है और वह उसका उपयोग करती है किंतु इससे यह न समझना चाहिए कि पह पतिसेवा से उदासीन हो गई है। लोग कहते हैं कि प्रेम मे द्विधा विष रूप होती है। परंतु दोनों प्रेमपात्रों के प्रेम ही दो भिन्न प्रकार के हो तब द्विधा कैसी। फिर "आत्मा वै जायते पुत्र" इस सिद्धांत से जब वह प्यारे पुत्र की चाल ढाल मे, रहन सहन मे, बोल चाल मे और सूरत शकल मे स्वामी की छाया देख रही है तब कहना पड़ेगा कि परमेश्वर के अवतार की जैसे छाया अंतःकरण की दूरबीन से

देखने पर मूर्ति मे दिखलाई देती है और दर्शन होते ही साक्षात् करने का अनुभव हो उठता है वैसे ही वह क्षण-क्षण मे पुत्र के शरीर मे पतिदर्शन का आनंद लूट रही है, किंतु जैसे भगवान् के साक्षात् दर्शन होते ही मनुष्य को मूर्ति की अपेक्षा नही रहती उसी तरह पति का दर्शन होते ही वह अपने आपे को भूल जाती है, पुत्र को भूल जाती है और सब कुछ भूल जाती है। बस जिधर देखो उधर पति परमात्मा।

इस तरह यदि पाठक प्रियवदा मे राग का उदय समझ ले तो उनकी इच्छा है। राग स्त्रियों का स्वाभाविक धर्म है। पातिव्रत का प्रधान प्रयोजन ही राग है और इस प्रकार का राग ही साध्वी ललनाओ की गति है क्योंकि पति को जब वे साक्षात् परमात्मा मानती हैं तब वही उनकी गति है। जब कीड़ा भौंरे के भय से ही भ्रमर बन जाता है तब इस तरह पति की आत्मा मे पत्नी अपनी आत्मा को जोड दे तो क्या आश्चर्य। इसी लिये पति पत्नी के दो भिन्न भिन्न शरीर होने पर भी पत्नी अर्द्धांगिनी कहलाती है। यदि ऐसा न हो तो दोनो के शरीर को सी नही दिया जा सकता, दोनों को खड़ा चीरकर एक दूसरे से जोड़ नही दिया जा सकता।

किंतु पंडित जी स्त्री-सुख मे, पुत्र-सुख मे और गृहस्थाश्रम मे मग्न रहने पर भी 'जल कमलवत्' अलग हैं। समय पड़ने पर वह यदि राग दिखलाते हैं तो हद दर्जे का और बुरी बातो से उनका द्वेष दिखलाई देता है तो सीमा तक, किंतु उनके

अंत:करण मे न राग के लिये स्थान है और न द्वेष की वहाँ तक गुजर है। जब वह अपने कर्तव्यपालन मे पक्के पंडित हैं तब कोई उनके बर्ताव को देखकर नही कह सकता कि वह कच्चे दुनियादार हैं किंतु यदि किसी के पास किसी का मन परखने का कोई आला हो, यदि "एक्स रे" जैसे पदार्थ की सृष्टि से शरीर के भीतरी भाग की तरह मन का निरीक्षण करने की किसी को सामर्थ्य हो तो वह कह सके कि उनका अंत:करण इन बातों से बिलकुल कोरा है। उसमे भगवान् की भक्ति, प्रभु के चरणारविंदो से प्रेम ओतप्रोत, लबालब भरा हुआ है और कहना चाहिए कि जिस मनुष्य मे यह बात हो, ऐसी अलौकिक अनिर्वचनीय अखंड संपदा जिसे प्राप्त हो वह सच-मुच ही जीवन्मुक्त है, उसके लिये वानप्रस्थ आश्रम की आव-श्यकता नहीं, उसके लिये संन्यास कोई पदार्थ नही।

लोकाचार मे पड़े रहने से यदि किसी को इस बात की थाह मिल जाय तो उनके इस ब्रह्मसुख मे विघ्न उपस्थित हो इसलिये वह अपने मन के भावो को गुप्त रखते हैं। काशी, प्रयाग, मथुरा और पुरी तथा गया की भाँति उनके भक्ति-रसामृत का प्याला किनारे तक, सींक उतार भरा रहने से कभी कभी झलक भी उठता है और जब झलक उठता है तब लोग उनको न परखकर उन्हे पागल भी समझ बैठते हैं, किंतु उन्हें इन बातो से कुछ मतलब नहीं। वह इधर दुनियादारी मे खूब रँगे हुए हैं और उधर प्रेम सरोवर मे

गोते लगाया करते हैं। उनका सिद्धांत यही है किंतु वह अपने मन को—

"पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य
दिङ्मंडलं व्रजसि मानस चापलेन।
भ्रांत्या तु यातु विमलं न तदात्मनीनं
तद्ब्रह्म संस्मरसि निर्वृतिमेषि येन॥"

की रट लगाकर प्रबोध दिया करते हैं।

— ---

प्रकरण—५६

ब्राह्मणों की जीविका

"अभी तो आपको यहाँ आए जुम्मा जुम्मा आठ ही दिन हुए हैं! अभी से उतावल?"

"आठ दिन क्या थोड़े हैं? मुझे तो आठ दिन आठ युग के बराबर बीत गए। खाली बैठे दिन पहाड़ के समान व्यतीत होता है। फिर जिस आदमी का घर नहीं, बार नहीं, जोरू नहीं, जाता नहीं, पैसा नहीं, कौड़ी नहीं—उसका विश्राम ही क्या? और काम ही क्या? "जहाँ पड़ा मूसल वहीं खेम कूसल" नित्य कमाना और नित्य खाना।"

"नहीं महाराज! आपके कुछ भी क्यो नहीं? सब कुछ है। यह घर आपका है, हम सब आपके है, आप बड़े हैं, पूज्य हैं, मुरब्बी है। आप बड़े भाई के समान हैं, उनसे भी बढ़कर। फिर ऐसा नहीं हो सकता कि हम आपको यहाँ से जाने दे। घर ठाकुर जी का है, हमारा क्या है? जैसे आप वैसे हम।"

"सचमुच आपका स्नेह अद्वितीय है। मैं भी आपको छोड़कर नहीं जाना चाहता। दुनिया मे मेरा है ही कौन जिसके पास जाकर माथा मारूँ? नसीब से कहीं सिर भी दुखने लगे तो कोई पानी पिलानेवाला नहीं। शरीर छूट जाय तो उठाकर जला देनेवाला नहीं! पड़ा पड़ा सड़ा करूँ

ता कोई खबर पूछनेवाला नहीं। परंतु यहाँ बिना काम काज के, खाली वैठे रोटियाँ तोडना मुझसे नहीं बन सकेगा।"

"नहीं! नहीं! आप कभी रोटियाँ तोडना न समझिए। भगवान् के घर मे आप अधिक और मैं कम। फिर आपके लिये काम भी मैंने सोच लिया है। वास्तव मे काम बिना आदमी निकम्मा हो जाता है, किसी काम का नहीं रहता, बिलकुल रद्दी। जो कुछ काम नहीं करता वह पाप करता है। और हम पैदा भी तो काम करने के लिये, कर्तव्यपालन के लिये हुए हैं, भोग विलास के लिये नहीं। सच पूछो तो अपने कर्तव्यपालन मे जैसा सुख है वैसा और किसी मे नहीं। इसके सामने त्रिलोकी का राज्य मिट्टी है, लाख रुपए के नोट रद्दी हैं, षोडशी रमणी धूल है। जो आनद अपने कर्तव्य-पालन मे सफलता हो जाने पर होता है वह सचमुच अलौकिक है। यदि हम लोग इस बात मे दृढ़ हो जायँ तो बस हमने विश्व को जीत लिया। सफलता और निष्फलता, परिणाम परमेश्वर के हाथ सही किंतु हमे फल की आकांक्षा पर राग द्वेष छोडकर काम करते रहना चाहिए।"

"हाँ! आपका कथन सही है। मैं भी ऐसा ही मानता हूँ। परंतु काम क्या सोचा है? देखूँ तो मैं उसे कर सकता हूँ या नहीं? क्योंकि जब मैं जानता कुछ नहीं तब ऐसा काम ही क्या होगा जिसे मैं कर सकूँ? हाँ थोडा बहुत कर्मकांड अवश्य जानता हूँ परंतु अब इससे गुजर होना कठिन है।

प्रथम तो हिंदुओं के दुर्भाग्य से अब इससे श्रद्धा ही उठती जाती है फिर जो कुछ, थोड़ो बहुत, बची बचाई है भी उसे मूर्ख ब्राह्मणों का दल नष्ट कर रहा है।"

"बेशक आप ठीक कहते हैं। अब केवल इस पर आधार रखना अच्छा नहीं। संस्कृत अवश्य पढ़नी चाहिए, कर्मकांड में अच्छी योग्यता प्राप्त करनी चाहिए और जो भावुक यजमान मिल जाय तो उसे कराना भी चाहिए। किंतु कर्मकांड सीखना अपना पेट भरने के लिये नहीं है। वेदादि शास्त्र पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना और दान देना, लेना ब्राह्मणों के ये छः कर्म हैं। वेद पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना केवल अपने कल्याण के लिये और वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना उपजीविका के लिये है। मेरी समझ में अपने कल्याण के लिये तीनों कर्म तो करने ही चाहिएँ। इनके बिना ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं, किंतु जीविका के लिये जिन कर्मों की विधि है यदि उन्हें कम कर दिया जाय, रोक दिया जाय तो फिर भी ब्राह्मणों का पहले का सा आदर हो सकता है। जो वस्तु दुर्मिल है, अधिक परिश्रम से मिल सकती है उसका आदर अधिक होता है। हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों की पर्णकुटियों पर बड़े बड़े राजा महाराजा महीनों तक जा जाकर जब टकराते थे, खुशामद करते थे तब कहीं मुशकिल से वे लोग यज्ञ कराना, दान लेना स्वीकार करते थे। पितामह ब्रह्मा के समझाने पर महर्षि वशिष्ठजी ने सूर्यवंश की पुरोहि-

ताई केवल इसलिये स्वीकार की थी कि उसमे भगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचंद्रजी का जन्म होनेवाला था। यदि अब भी हम लोग दान दक्षिणा के लिये यजमान के द्वार पर घंटों तक रिरियाने, हाथ फैलाने से हाथ खैंच ले तो निःसदेह उन ऋषियों का सा आदर पा सकते हैं, जो लोग हम पर स्वार्थ का कलंक लगाते हैं उनके मुख पर अच्छी खासी चपत लग सकती है। भगवान् विश्वंभर है। राजा और रक को भूखा जगाता है, भूखा सुलाता नही। ब्राह्मणों मे अव भी सैकडों, हजारों ऐसे हैं कितनी ही जातियाँ ऐसी हैं जो ब्राह्मणो की वृत्ति नही करतीं, इस जीविका से पेट नहीं भरतीं, उनका योगक्षेम अच्छी तरह चलता है। वे दान लेनेवालो से अच्छे हैं। यदि हम लोग केवल आत्मकल्याण के लिये वेदादि शास्त्रो का अध्ययन करे, यथाशक्ति यज्ञादि कर्म करते रहैं और योग्यो को दान दे तो ऐसे धंधों से जिनके करने से ब्राह्मणत्व पर दोष न आवे अपना अच्छी तरह निर्वाह कर सकते हैं। अव भी ब्राह्मणों मे भगवान् भुवनभास्कर का सा ब्राह्मणत्व प्रकाशमान् है। ऐसा करने से उनका महत्त्व बढ़ेगा, और उनके सदाचार से, उनकी सुशिक्षा से, उनकी निःस्वार्थता से संसार उनके पैरों पर मस्तक नवावेगा। अव भी कुछ विगडा नही है, अव भी नई रोशनीवालों मे, नई नई उन्नतियों, राज-दर्बारो मे, और और वर्णों से ब्राह्मणों का ऊँचा आसन है। जो कार्य वे कर रहे हैं वे कर सकते हैं, वह दूसरे वर्णों से

नहीं हो सकता। भारतवर्ष की यावत् उन्नतियों के अगुआ अब भी ब्राह्मण हैं। अँगरेजी की उच्च शिक्षा ब्राह्मणो मे अधिक है।"

"निस्संदेह यथार्थ है परंतु तब करना क्या चाहिए? क्या ज्योतिष पर गुजारा किया जाय? इससे भी तो पेट भरना कठिन है। जब फल ही नहीं मिलते तब लोग देने भी क्यों लगे? और झूठी बातें बनाना अच्छा नहीं!"

"हाँ मैं भी मानता हूँ। वास्तव मे यदि फलित ज्योतिष को ठीक ढंग पर न लाया जायगा तो किसी न किसी दिन यह शास्त्र भी हमारे हाथ से गया समझो। लोगों की श्रद्धा उठती जाती है और जिन्होने अँगरेजी की थोडी सी ए, बी, सी, डी, पढ़ ली है वे इसका मर्म न समझकर इसे वाहियात असंभव बतलाकर पूर्वजों की निंदा करते हैं, ब्राह्मणो को ठग बतलाते हैं। परंतु क्या इसमें दोष शास्त्र का है? क्या शास्त्र ही मिथ्या है? अथवा उसका संस्कार दूषित हो गया है? अथवा पढ़नेवालो की ही अयोग्यता है? मेरी समझ में शास्त्र का दोष नहीं क्योकि वह सत्य है। निर्विवाद सत्य है। हाँ! पढ़नेवाले अवश्य अपराधी हैं। वे पढे बिना ही अथवा ज्योतिष का ककहरा सीखकर ही झूठ मूठ मीन, मेष, वृष अपनी अँगुलियों पर गिनकर भविष्यद्वक्ता बन बैठते हैं। उनके स्वार्थ से हिंदुओ के सब धर्मकार्य धूल मे मिले जाते हैं।"

"परंतु क्या फलित ज्योतिष के फल न मिलने के अपराधी वे ही लोग हैं?"

'नहीं! शास्त्र के संस्कार भी दूषित हो गए हैं। अहा! अपने पूर्वजों की प्रशंसा किए बिना मैं आगे नहीं बढ़ सकता। जो काम लाखों रुपया खर्च करके, हजारों की दूरबीनों द्वारा आज दिन विद्वान् युरोपियन करते हैं वह उन्होंने आज से हजारों वर्ष पहले नरसल और मिट्टी से सिद्ध कर लिया था। आज भी एक अच्छा ज्योतिषी केवल नरसल की नलिका को मिट्टी मे गाड़कर ग्रहों का वेध कर सकता है। यदि उसके पोथी पत्रे छीन लिए जायँ तो जनशून्य जंगल में बैठे बैठे वह केवल इन्हीं की मदद से आज बतला सकता है कि तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण क्या हैं? तारीख क्या है?"

"अच्छा! यह तो आपने गणित के गुण गाए। परंतु फलित मे दोष आने के कारण?"

"गणित के दोष से ही फलित दूषित हो गया है। बात यह है कि भास्कराचार्य को ग्रहों का वेध कर सूर्यसिद्धांत बनाए लगभग छः हजार वर्ष हो गए। नक्षत्र स्थिर होने पर भी थोड़े थोड़े अपने अपने स्थानों से हटते हैं। उन्होंने इस हटाहटी का निश्चय करके लिख दिया है कि इतने वर्षों मे इतना अंतर निकाल देना चाहिए। ग्रहलाघवकार ने जब ग्रहों के उदयास्त में उनकी गति मे अंतर देखा तब उसने उसी आधार पर गणित करके, वेध कर नहीं, वह अंतर निकाल दिया। इस बात को भी तीन हजार वर्ष हो गए। बस पंचांगों में ग्रहों का उदयास्त न मिलने का यही कारण है। इसी

कारण ग्रहण का समय नहीं मिलता, ग्रहों के उदयास्त नहीं मिलते, ऋतु में अंतर रहता है। ऐसे अंतर की भूल से मुहूर्त ठीक नहीं दिए जाते और जन्म का समय ठीक न होने से जन्मपत्र के, वर्ष के फल नहीं मिलते।"

"तब इसके उपाय ?"

"उपाय दो हैं। एक विलायत के पंचांगों से अपने पंचांगों का मिलान कर अंतर निकाल लेना। काशी के और दक्षिण के ज्योतिषी "नाटिकेल् अलमानक" की सहायता से पंचाग बनाते हैं। उनका गणित मिलता जुलता है परंतु जैसा मेल ग्रहों का प्रत्यक्ष वेध करने से हो सकता है वैसा नहीं। इस-लिये आवश्यकता इस बात की है कि उज्जयनी, जयपुर अथवा काशी की वेधशाला में प्रसिद्ध प्रसिद्ध ज्योतिषी इकट्ठे होकर दूर-बीनों के सहारे ग्रहों का वेध करें और तब नया करण ग्रंथ तैयार किया जाय। एक बार बंबई में समस्त ज्योतिषियों ने इकट्ठे होकर विचार भी किया था परंतु उत्साहहीनता से, धनाभाव से और आपस की फूट से "टॉय टॉय फिस" हो गई। अब भी इस बात का जितना ही शीघ्र उद्योग किया जाय उतना लाभ है। पंचांगों की अशुद्धि से हमारी बड़ी भारी धर्महानि है और फलित शास्त्र ही झूठा पड़ा जा रहा है सो घलुए में!"

"परंतु मेरे लिये आपने क्या उपाय सोचा है ?"

"आपके लिये दो उपाय हैं और वे दोनों साथ साथ संपादन हो सकते हैं। सबसे प्रथम तो चिकित्सा। हमारे

आयुर्वेद के अनुसार चिकित्सा करने मे प्रजा का जितना लाभ है उतना किसी और तरह से नहीं। इसकी दवाइयाँ सस्ती, सुलभ और बच्चे बच्चे की जानी हुई हैं। लाभ चाहे देरी से हो किंतु होता चिरस्थायी है। परमेश्वर ने यहाँ के निवासियों की जैसी प्रकृति बनाई है उसी के अनुसार इस देश मे औषधियाँ भी उत्पन्न कर दी हैं। डाक्टरी इलाज का फायदा चाहे मिनटों ही मे क्यों न दिखलाई दे जाय परंतु उससे सदा के लिये रोग का विनाश नहीं होता और देशी दवाइयाँ बीमारी को जड़ से उखाड़ डालती हैं। सैकड़ों बार के अनुभव से यह साबित हो गया है कि जहाँ असमर्थ होकर, हताश होकर, बड़े बड़े डाक्टर हाथ खैंच लेते हैं, जहाँ हजारों रुपया इसलिये भाड मे जा चुकता है वहाँ टकों की देशी दवा से लाभ होता है। फिर डाक्टरों की फीस और दवा की कीमत का खर्च भी तो बहुत भारी है। इधर हमारे राजा महाराजा, धनवान्, देशहितैषी आयुर्वेद के लिये एक पाई खर्च नहीं करते और उधर हर तरह से डाक्टरी को मदद मिल रही है। जिसकी सहायक सरकार उसका कहना ही क्या? नहीं तो देशी इलाज के आगे अब तक उसका पैर ही न जमने पाता।"

"हाँ! राजा महाराजा और देशहितैपियों की उदासीनता है सही परंतु विशेष दोष वैद्यों का है। न वे विद्या पढ़ते हैं और न इलाज करना जानते हैं। बस अटरम सटरम दवा देकर टका कमाने से काम। रोगी जीये चाहे मरे। बस

अपना उल्लू सीधा करने से मतलब। इसी का परिणाम है कि वैद्यो का इलाज बंद करने के लिये कानून बनने की नौबत आ रही है और जो अब भी हम न चेते तो इस शास्त्र का भी लोप ही समझ लो।"

"बेशक! वैद्यों मे योग्यता का अभाव इसका प्रबल कारण है। सचमुच ही लोग लाते मार मारकर उसे डुबो रहे हैं परंतु और भी दो बातों की त्रुटियाँ हैं। एक हमारे शास्त्रो मे चीर फाड़ का विस्तार नही है। सुश्रुत मे है परंतु समय के अनुसार युरोपियन विद्वानो ने इस कार्य मे जो असाधारण उन्नति की है उसके लाभ से हमे वंचित न रहना चाहिए। आयुर्वेद आप का पढ़ा हुआ है, आप इसमे सिद्धहस्त हैं, अनुभवी हैं और यशस्वी हैं, रोगी को आपके दर्शन होते ही आधा आराम हो जाता है। इस यात्रा मे मुझे कई बार इसका अनुभव हो गया। फिर आपकी दवा भी असाधारण है। अस्पताल मे नौकरी करके आप चीर फाड का भी अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। इधर संस्कृत ग्रंथों का मेरे यहाँ टोटा नही और उधर डाक्टरी की बढ़िया से बढ़िया पुस्तकें मराठी और गुजराती मे भाषांतरित हो चुकी हैं। जहाँ कहीं अँगरेजी की मदद चाहिए वहाँ मैं तैयार हूँ। बस इसलिये यह काम सिद्ध समझिए।"

"अच्छा! दूसरी त्रुटि से आपका मतलब शायद ओषधियाँ अच्छी न मिलने से है। बेशक दवाइयों का बड़ा अँधाधुंध है। भील पंसारी से और पंसारी वैद्य से कह दे सो ही दवा। वह

दवा चाहे संजीवनी की जगह हलाहल ही क्यो न हो। न दवा को वैद्य पहचानते हैं और न पंसारी। और दवा लानेवाले निरे गँवार, जंगली। फिर पंसारी के यहाँ की दवा कभी सडती नहीं, बिगड़ती नहीं। चाहे कीड़े पड़कर वह दवा विप ही क्यों न हो जाय परंतु जब तक थैली खाली न हो जाय, नई मँगाने का काम क्या ?"

"इसका उपाय मैंने यह सोचा है कि जो ओपधियाँ बाजार मे अच्छी मिलती हैं उन्हे दिसावर से थोकबंद मँगवा लेना, जो आबू हरिद्वार और बदरीनारायण की ओर मिलनेवाली हैं उन्हे वहाँ से इकट्ठी इकट्ठी मँगवाना और जो दुर्मिल हैं उनके बीजो का पता लगा लगाकर अपने बगीचे मे बो देना। इसके लिये जितनी आवश्यकता होगी उतनी जमीन निकाल दी जायगी।"

"और रुपया ? पहला सवाल रुपए का ही है।"

"महाराज, यह बड़ा पुण्य कार्य है। इसमें गरीबो को अन्न वस्त्र भी मिलेगा। औपधालय मे आनेवाले को दवा मुफ़्त। किसी अमीर के घर जाकर आप इलाज करे अथवा वह मदद के नाम से रुपया दे तो लेने में कुछ हानि नहीं और जब इसका यश फैल जायगा तो बिना माँगी मदद मिलने लगेगी। काम ऐसा होना चाहिए जो दुनिया के लिये नमूना बन जाय। हमारे काम की कोई नकल करे तो खुशी से। जो सीखना चाहे उसे सिखाने को तैयार।"

"हाँ हाँ। यह ठीक। परंतु रुपए का सवाल बडा टेढ़ा है। सर्वारम्भास्तंदुलप्रस्थमूलाः।"

"पंडित जी, रुपयो की आपने अच्छी चिंता की। इसके लिये ठाकुर जी मदद देंगे। अभी काम आरंभ करने के लिये हजार दे। हजार बहुत हैं। बस जितना चाहिए कांतानाथ से ले लीजिए। मैंने उससे कह दिया है। यदि सुकार्य मे लगाते दरिद्र आ जावे ते। कल का आता आज ही सही। रुपया हाथ का मैल है और धर्म मे लगाने से बढ़ता है, घटता नहीं।"

"यह आपकी उदारता है, परोपकार है और मुझ अकिंचन पर दया है। परंतु हाँ। दूसरा उपाय? प्रथम ते। उन साधु बालक बालिका को पढाना। क्यो यही ना?"

"हाँ। यह तो परोपकार के लिये है परतु मेरी झूठी प्रशंसा करके काँटो मे न घसीटो। प्रशंसा आदमी के लिये जहर है। वह जीते ही मार डालती है। दूसरा काम ब्राह्मणो का मुख्य कर्तव्य शिक्षा देना, उपदेश देना है। नियत समय पर भगवान् के मदिर मे लोगों को धर्म का उपदेश देना, और जो विद्यार्थी आपसे जिस शास्त्र का अध्ययन करने आवे उसे जी खोलकर पढाना। विद्यादान और ओषधिदान का बडा पुण्य है। साथ ही संस्कृत ग्रंथो का भाषांतर करना भी।"

"वास्तव मे आपने उपाय अच्छे बतलाए। यथाशक्ति थोड़ा और बहुत सबका संपादन करूँगा और जब हर बात मे सहायता देने के लिये आप जैसे महात्मा तैयार हैं फिर

सफलता मे संदेह भी नही किंतु महाराज, प्राचीन संस्कृत ग्रंथ मिलते ही कहाँ हैं ? दुष्टों ने उन्हे जला जलाकर हम्माम गर्म कर डाला। सच पूछो तो जितनी हानि पुस्तक जला देने से हुई, हमारी क्या दुनिया की हुई, वह कभी मिटने की नहीं। रुपए इकट्ठे हो सकते हैं परंतु पुस्तकें नही।"

"हाँ। (रोकर) हाय! वास्तव मे बड़ा अनर्थ हो गया। परंतु जो बात निरुपाय है उसका दुःख ही क्या ? अब भी जितने ग्रंथ मिल सकते हैं उनका उद्धार करने से आँसू पुछ सकते हैं। परतु महाराज अंत में मैं फिर कहूँगा कि जिनके लिये विद्या से जीविका चलाना कठिन है वे व्यापार करके, कारीगरी सीखकर और नौकरी करके अपना पेट पाल ले। ब्राह्मण होकर जूते बनावे और शराब की दूकानें खोले, ऐसी बातें अवश्य निंदनीय हैं किंतु जो लोग अपात्रो से, कुपात्रो से पैसा माँगकर ब्राह्मणत्व का अनादर करवाते हैं उनसे मैं संध्यावंदनादि मे निपुण पाँच रुपए की भैयागरी, चपरासगरी और दरबानी करनेवाले को श्रेष्ठ समझता हूँ। मेरी समझ मे देशोपकार की लंबी लंबी डींगें हाँकनेवाले भ्रष्ट ब्राह्मणों से वे हजार दर्जे अच्छे हैं। संतोष मात्र चाहिए क्योंकि 'असंतुष्टा द्विजा नष्टाः'।"

बस लेखक की कल्पना ने इस उद्योग की सफलता को सीमा तक पहुँचा दिया। अब कार्य मे प्रवृत्त होना पाठकों का काम है।

प्रकरण—६०

घर चौपट हो गया

"बुढ़िया ने पीठ फेरी और चरखे की हो गई ढेरी।" वास्तव में भगवानदास का घर चौपट हो गया। बूढ़ा गँवार था, पढ़ा लिखा बिलकुल नहीं और आजकल की "उन्नति" की पुकार उसके कानों तक भी नहीं पहुँची थी, परंतु उसने अपनी छोटी सी गृहस्थी मे, अपनी साधारण हैसियत मे और अपने गरीब घर मे, दिखला दिया था कि गृहराज्य कैसा होता है। जो घर का प्रबंध कर सकता है, जिसकी आज्ञा का पालन बेटे बेटी करते हैं और जो अपने घर की उन्नति कर सकता है वही देश का प्रबंध भी कर सकता है। प्रबंधकर्ता मे पहली योग्यता यही होनी चाहिए। पोथे रट रटकर माथा खाली करने की जितनी आवश्यकता नहीं उतनी "इंत-जामी लियाकत" चाहिए। लोग कहते हैं कि "संयुक्त कुटुंब" की प्रणाली से देश चौपट हो रहा है, कोई भी उन्नति नहीं कर सकता, किंतु उसकी बूढ़ी बुद्धि ने साबित कर दिखाया कि संयुक्त कुटुंब गृहराज्य है, राज्य-प्रबंध का नमूना है। यदि देश मे ऐसे कुटुंबों की अधिक संख्या हो तो स्वभाव से ही एकता बढ़ जाय, मुकदमेबाजी आधी रह जाय और यही देहाती पंचायत का मूल सूत्र है। शरीर के जितने कार्य हैं उन्हें न

अकेला माथा कर सकता है और न दो हाथ। जब दशो इंद्रियाँ मन की इच्छा के अनुसार मिल जुलकर अपना अपना काम करती हैं तब ही शरीर चलता है। "याज्ञवल्क्य स्मृति" मे देशप्रबंध की व्यवस्था कुलपति, कुलपतियों पर ग्रामपति और फिर बढ़ते बढते राज्यपति, राजा, इस तरह की है। "जिन ते सँभल सकत नहि तन की धोती ढीली ढाली, देश-प्रबंध करेंगे यह कैसी है खाम खियाली।" किसी ने यह लोकोक्ति खूब फबती कह डाली है।

अस्तु! भगवानदास के गृहराज्य का यह पहला दृश्य है किंतु दूसरे " सीन " ने बिलकुल तख्ता उलट दिया। बूढे के जाते ही पहले सीन पर परदा पड़ गया। उसके मित्र ने जहाँ तक उससे बन सका, तन मन और धन से सँभाला परंतु उसकी अधिक दिन दाल न गलने पाई। जो कार्य कर्तव्य-बंधन से बाँधकर नही किया जाता है उसकी चेपा चापी बहुत समय तक नहीं चल सकती। "काठ की हँडिया बार बार नही चढ़ती है।" बूढे के जाते ही शृंखला टूट गई, दबाव जाता रहा, कर्तव्य का चूर मूर हो गया और कलह का, स्वार्थ का, मनमुटाव का और ईर्ष्या का सीन खड़ा हो गया। मृदु, मधुर और मंद प्रेम से यह अत्याचार नहीं देखा गया इसलिये वह भी अपना बधना बोरिया लेकर चलता बना। अब भाई भाई मे नहीं बनती है, लुगाइयो लुगाइयो मे गाली गलौज होती है, खसम जोरू मे मार पीट होती है और

एक दूसरे को देखकर आँखों में से शत्रुता की चिनगारियाँ फेंकने लगता है। बैल भूख के मारे कल मरते आज ही क्यों न मर जायँ उन्हें कोई पानी पिलानेवाला नही, जंगल से घास काटकर लानेवाला नहीं। खेती सूखती है तो क्या पर्वाह ? चरस चलाकर सीचने का परिश्रम हमसे नहीं होता है। क्या हम किसी के गुलाम हैं जो बारिश मे, धूप में और जाड़े मे खेती की रखवाली के लिये जंगल में रहें ? और बघेरा खा जाय तो ? नही नहीं ! हमारे फूल से बच्चे बछड़ों को चराने नही जायँगे। लगान का तकाजा है तो जाने सेवा ! चाचा जी उसे मालिक बना गए हैं। कोई छाती कूटे तो भले ही कूटे। आज बस हलुवा पूरी उड़ेगी। बस इस तरह का गदर मच गया। बाहर के चोर नहीं किंतु घर की घर मे चोरियाँ होने लगीं। कोई गल्ला बेचकर रुपया हजम कर जाता है तो किसी ने बैल ही बेचकर कीमत अंटी मे दबाई है। खेती सूख गई। बीज तक वसूल होने का ठिकाना नहीं। लगान की किस्त चढ़े अर्सा हो गया। कुर्की की नौबत आ पहुँची। दो चार बैल मर गए। एक भैंस ऐसी मरी जो डेढ़ सौ मे भी सस्ती थी। कई एक गाएँ ठंठ हो गईं। पूँजी पसारा बिगड़ गया। एक चूल्हे के सात चूल्हे हो गए। बेटे अलग, पोते अलग और जो इकट्ठे हैं उनके मन अलग, स्वार्थ अलग। और इसलिये "जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।" का फोटो सामने पुकार पुकार कहने

लगा कि कलह का, कर्तव्यशून्यता का और बड़े बूढ़ों के अभाव का यही नमूना है। जो काम बूढे ने वर्षों के परिश्रम से, अनुभव से तैयार किया था वह महीनो में, घंटों मे नष्ट हो गया। वर्षों की मिहनत से पाला पोसा फूलदार, फलदार वृक्ष मूर्खता की आँधी ने जड़ से उखाड़कर फेक दिया।

इस फोटो से पाठक समझ सकते हैं कि बूढे, बुढ़िया ने जब वापिस आकर घर मे पैर रखा तब धौले दुपहर के भव्य प्रकाश के बदले भर भादों की ताराशून्य घोर अँधियारी रात थी। सबने सब ही की आ आकर बाप के आगे चुगलियाँ खाईं। सब ही अपने अपने मन से निर्दोष हैं और उनके सिवाय दूसरा दोषी। सब से अधिक दोष सेवा पर, उसकी बहू पर मढ़ा गया, किंतु ऐसे झूठे अपराधो के लिये अपनी सफाई दिखलाकर वे कसम खाने तक को तैयार हैं, गंगा उठाने मे सन्नद्ध हैं। इन दोनो की गवाही भगवानदास के अंतरंग मित्र ने भी दी। उसने आदि से अंत तक एक एक का पृथक् पृथक् इतिहास सुनाकर स्पष्ट कह दिया कि इन दोनों का कुसूर बिलकुल नहीं। इन दोनो ने जिस तरह विपत् झेली है परमेश्वर ही जानता है। भूखों मर मरकर रात काटी है। इनके पास दाना चबाने के लिये भी कुछ नहीं रहा। इतना कहकर उसने सलाह दी कि—"तुम अपने सामने सब के हिस्से बाँट दो। नहीं तो इनमे सदा ही जूता चलता रहेगा। ये अदालत तक पहुँचकर, अमले

के, वकीलों के घर भरेंगे और चार ही दिन मे देख लेना कि जिस घर का आतंक आज दिन बस्ती भर मानती है उसी के आदमी दाने दाने को तरसेंगे, औरों की ढोरे चराते फिरेंगे, हल जोतते फिरेंगे।"

बूढे की इच्छा नहीं थी कि उसके सामने सब बेटे पोते अपने जोरू बच्चों को लेकर अलग हो जायँ क्योंकि वह जानता था कि जिस घर की साख आज लाख की है वह खाक की हो जायगी। तिनके तिनके इकट्ठे करके रस्सी बनाने पर मतवाला हाथी भी बँध सकता है किंतु वे ही तिनके जुदे पड़ने पर एक चिउटी को भी नही बाँध सकते। इस कारण उसे अपने मित्र की सलाह पसंद न आई। वह यात्रा के परिश्रम से, भूख प्यास सहकर यद्यपि थक गया था, चाहे उसे अब अधिक जीने की आशा नही थी और वह इस उमर को पहुँचकर अब घर की ओर से, दुनियादारी से उदासीन भी हो गया था और अब वह "सब तज और हर भज" की ओर अपना मन लगाए हुए था किंतु बूढी हड्डियों मे फिर जवानी का जोश दिखलाकर जी तोड परिश्रम से वह सब ठिकाने ले आया। लड़कों को दुनिया की नीच ऊँच दिखलाकर पंडित जी और गौडबोले ने उन लोगों को बहुत समझाया और तहसीलदार ने भी धमका धमकूकर फिर वैसा ही ढंग डालने में पूरी सहायता दी। यों काम अवश्य चल गया परंतु चला चेपा चापी ही। जिस भगवानदास के नख मे भी कभी रोग

नहीं था, जो नहीं जानता कि बुखार किसे कहते हैं वह इस मेह-नत से थककर बीमार रहने लगा। इसकी बीमारी बढ़ते ही फिर वही गदर। अब इसने समझ लिया कि मित्र की सलाह के अनुसार इन लोगों के हिस्से किए बिना मेरी आँख के सामने ही ये लोग "जूतम फाग" खेलेंगे। इसलिये उसने सबको इकट्ठा करके जो कुछ माल ताल जमीन जायदाद रुपया पैसा बचा बचाया था वह पाई पाई बराबर बाँटकर झगड़ा मेट दिया।

यों घर के धंधे से निपटकर वह यद्यपि उनसे उदासीन हो गया किंतु उन्होंने भी अब इसको निरर्थक, रद्दी समझ लिया। "बूढ़ा मर जाय तो अच्छा। अब यह काँटा ही है। इसके खर्च का वृथा ही बोझा है।" वे खुला खुली कहने लगे। बूढ़े बुढिया को यदि ज्वर पीडा से कोई करा-हते देखता है तो उसकी ओर से आँख बचाकर चला जाता है। सवेरे किसी ने रूखी सूखी रोटियाँ पहुँचा दीं तो पहुँचा दीं और भूल गए तो भूल गए। किसी का कर्ज थोड़े ही चुकाना है? अब उसके पास फटे कपड़ों और टूटी चारपाई के सिवाय कुछ नहीं है। एक लोटा केवल और है जिसमें सत्रह पैवंद लगे हैं। परंतु उसे इस बात का रंज नहीं है। माँ बाप यदि बेटे बेटी पर बहुत से बहुत नाराज हो जायँ तो इतनी गाली दे सकते हैं कि जैसे तुम हमें बुढ़ापे में सताते हो वैसे ही तुम्हारे बेटे पोते तुमको सतावें। किंतु इस गाली में भी आशीर्वाद है। वह "जाही विधि राखै राम, ताही विधि

रहिए।" के अटल सिद्धांत को दृढ़ता से पकड़े हुए है और अपनी हालत मे मस्त रहकर "राम राम" जपते हुए दिन रात निकाल देता है।

यों सज्जनों के सत्संग से बूढे बुढ़िया को हर्ष शोक नहीं है किंतु कष्ट देख देखकर उसके अंतरंग मित्र का जी जला करता है। इतने दिनों के अनुभव से उसने ठहरा लिया है कि "यह राई रत्ती दे डालने का नतीजा है। यदि भगवान् थोड़ा बहुत अपने पास रख लेता तो उसके लालच से उसकी वे खातिरे होतीं जिनका नाम।" बस इस विचार से वह एक दिन एक थैली लेकर आया। उसे सबके सामने बजा-कर, खोलकर दिखाने के बाद भगवानदास के कान मे कुछ कहकर उसने उसके नाम की चपडी की मुहर उस पर लगा दी और एक भंडरिया मे उसे रखकर ताली बूढे की कमर में बाँध दी। अब लड़कों ने बहुतेरी विनती की परंतु इस रकम का हिस्सा न किया गया। "जो हमारी सेवा करेगा वह पावेगा। और को एक कौडी नही।" कहकर उसने कड़ा हुक्म दे दिया। बस उसी समय से उसकी खातिरें होने लगीं। एक के यहाँ से खोर आती है दूसरा नया कपडा बनवा देता है और तीसरा आधी रात तक चरण चापता है। कोई पंखा झलता है तो कोई मक्खियाँ उड़ाता है। माँ बाप की सेवा करने मे एक दूसरे की बदाबदी, होड़ाहोड़ी होने लगी और बूढ़े बुढ़िया को हथेली पर थुका थुकाकर उनकी सेवा होने लगी।

यहँ सब कुछ हुआ और अब वृद्ध दंपती को अपनी संतान के लिये कोई विशेष शिकायत भी न रही परंतु जब अमर कहलाने पर भी देवताओं की उमर की अवधि है, जब जिसका नाम उसका नाश अवश्यंभावी है और जब ये दोनों जीवन की सीमा तक पहुँच चुके हैं तब यदि भगवानदास का काल आ जावे तो क्या आश्चर्य ? वह मर गया और बिना किसी बीमारी विशेष के साधारण ज्वर आकर बात करते करते, "राम राम" की रट लगाते लगाते, मृत्यु की असह्य वेदना के बदले हँसते हँसते मर गया, और ऐसी मौत कि जिसने खबर पाई उसके मुँह से यही निकला कि "ऐसी मौत भगवान् सबको दे। जिसे जन्म भर किसी से दीनता न करनी पड़े और जो ऐसे अनायास, बिना कष्ट पाए मर जाय, उसका जीना और मरना दोनों सार्थक हैं। उसे अवश्य स्वर्ग मिलेगा। पुण्यवानों की यही निशानी है।" खैर बूढ़ा तो मरा सो मरा किंतु बुढ़िया की अजब हालत हुई। वह सत्तर वर्ष की डोकरी होने पर हट्टी कट्टी थी। उसे किसी तरह की बीमारी नहीं थी। परंतु पति परमात्मा का परलोकवास होते ही उसने भी सहगमन किया। पति के स्वर्गवास होने की भनक कान में पड़ते ही "अब मैं जीकर क्या करूँगी ? जहाँ वह तहाँ मैं।" कहकर "राम राम" जपते जपते उसने भी शरीर छोड़ दिया। केवल पति सेवा के सिवाय उसे कुछ मतलब नहीं था। वह विशेष बात भी किसी से नहीं करती थी बल्कि लोग कहा करते थे

कि उसकी समझ मोटी है परंतु आज उसने दिखला दिया कि पढ़ी लिखी औरतों से वह हजार दर्जे अच्छी निकली। दोनों की वैकुंठियाँ साथ निकलीं, दोनों एक ही चिता मे जलाए गए और अपना कर्तव्य पालन करते हुए, दुनिया का यश लूटकर परमेश्वर की भक्ति करते हुए, सीधे स्वर्ग को सिधार गए। विद्या चाहे हो चाहे न हो। वह विद्या ही किस काम की जिससे परलोक न सुधरे परंतु अपढ़ होकर भी इन्होने दोनों लोक सुधार लिए। वास्तव मे ऐसे ही लोगों का जन्म सार्थक है। धन्य भगवानदास ! धन्य साध्वी ! तुम दोनों को धन्य है ! भारत मे ऐसे ही सज्जनो की आवश्यकता है। पातिव्रत की पराकाष्ठा है। सरकारी कानून भी परमेश्वर के कानून के आगे कुछ नहीं।

खैर ! दोनों की मृत्यु के बाद उनकी तेरही हो जाने पर जब इनके बेटों ने थैली सँभाली तब रुपए की आशा मे पैसे पाए। ये सब बाप के मित्र से लड़े झगड़े भी कम नहीं, यहाँ तक कि उस पर मुकद्दमा चलाने को तैयार हो गए किंतु जब भगवानदास का तहरीरी सबूत उसके पास था और जब इसका असली भेद हाकिमो को मालूम था तब उन लोगो की कुछ चली चलाई नही। हाँ ! जरा जरा सी बात पर वे लोग आपस मे लड़ लड़कर फौजदारी करते और मुकद्दमे लड़ाते लड़ाते कट मरे। उनका पूँजी पसारा सब नष्ट हो गया और सचमुच उनके लिये वही अवसर आ गया जिसका बाप

के मित्र को पहले से भय था। अब वे औरों के यहाँ मज-दूरी कर करके अपने पेट भरते हैं, अपने किए पर पछताते हैं, माँ बाप को याद करके रोते हैं। इस विपत्ति के समय यदि कुछ सहारा है तो यही कि पंडितजी ने उन्हे बुला बुलाकर किसी न किसी काम मे लगा दिया है। यों अंत मे वे लोग अपने दुःख के दिन सुख से बिताने लगे हैं।

प्रकरण—६१

मठाधीश साधु

पाठक यह न समझ लें कि पंडित प्रियानाथजी घर आकर उन साधु बालकों को भूल गए। वह भूलनेवाले मनुष्य नहीं वरन् यों कहना चाहिए कि वे जान की जोखों उठाकर अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेवाले थे। जिस काम मे उन्होने हाथ डाला उसे पार तक पहुँचा दिया। ऐसी प्रतिज्ञा ही क्यो करनी जिसका निर्वाह न हो सके ? और जब करनी तब पार उतारनी, यह उनका अटल सिद्धांत था। अस्तु ! जिस समय वे गाँव मे पहुँचे उसी घड़ी उन बालक बालिका के लिये पहाड़ी टीलेवाली गुफा उन्होंने साफ करवाई, धूनी का, सीतल-पट्टी का, कंबलों का और जल का प्रबंध किया और जब उन दोनों की भिक्षा हो गई तब आप अन्न जल लिया। अब जो कुछ इनके घर मे बनता है उसमे इन दोनों के योग्य सिद्धान्न इनकी कुटी पर पहुँचा दिया जाता है। पंडित जी और गौड़-बोले पारी पारी से उनको जाकर नित्य सँभाल आते हैं। यों ये कभी कभी गाँव मे भी आते जाते हैं परंतु नित्य नहीं, महीना बीस दिन मे। पहले पहले लोग उनकी कुटी पर जा जाकर अपना अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिये प्रार्थना भी करते थे। कुसंग के लिये ललचाकर फँसानेवाले भी गए

परंतु न तो इन्होंने किसी से आँख उठाकर वार्तालाप किया और न पंडितजी ने इनके पास भीड इकट्ठी होने दी। यों धीरे धीरे अपना लाभ न होता देखकर लोग लुगाइयों ने अपने आप इनके पास जाना बंद कर दिया। अब शरीर के खटके से निपटकर स्नान करने के अनंतर आठ पहर मे एक बार जो कुछ भिक्षा आवे उसे गड्डमड्ड करके खा लेने के सिवाय इन्हें कुछ काम नहीं। गुरू की बताई हुई काम-विकारों को शमन करनेवाली बूटी इस पहाड़ी पर भी बहुतायत से है। उसे ला लाकर यह अवश्य खाते हैं। और यों केवल चार घंटे की निद्रा के सिवाय इनका दिन रात भजन मे बीतता है। बच-पन से इनके गुरू ने "राम राम" का जो जप बतला दिया है उसे ही वे करते हैं और पद्मासन जमाकर गर्दन झुकाए, अपनी नासिका से चिपटती हुई पृथ्वी पर शुद्ध स्थान मे लिखे हुए प्रणव पर हृदय की दृष्टि, चर्मचक्षु नहीं क्योंकि ध्यान के समय ये मुँदी रहती हैं, जमाकर ध्यानावस्थित रहते हैं। गुरू जी ने एक बात और बतलाई है। वह यह कि ध्यान भग-वान् श्री कृष्णचद्र की बाललीला की मूर्त्ति का करना। जब, जिस समय तुम्हारा ध्यान और तुम्हारा जप एक हो जायगा तब ही उस मूर्त्ति मे से ध्रुव बालक की तरह भगवान् हरि तुमको प्रकट होकर दर्शन देगे। इसमे उन्हे इतने वर्षों के उद्योग से कहाँ तक सफलता हुई सो इन्होंने किसी को नहीं बतलाया और ऐसे गोपनीय मत्र अधिकारी बिना किसी

को बतलाने के लिये भी नहीं हैं। हाँ! उन दोनों के मुख कमलों का निरीक्षण कर प्रत्येक विचारवान् सज्जन बतला सकता है कि तप उनके चेहरे पर झलकता है, कार्य की सिद्धि उनकी आँखों के सामने नाच रही है और संयम का कवच संसार के यावत् विकारों से उनकी रक्षा कर रहा है।

ऐसे जितेंद्रिय, दृढ़मना और तपस्वी महात्माओं के लिये पुस्तक रटने की आवश्यकता नहीं। पुस्तक पढ़ना इसमे जानकारी लाभ करके कार्य का आरंभ करने के लिये है और ये अपने उद्योग मे बहुत आगे निकल गए हैं किंतु गुरु-मुख से मन्त्रोपदेश ग्रहण करने और इतनी सी क्रिया सीख लेने के सिवाय ये कुछ नहीं जानते हैं। हाँ! ये जितनी इसकी साधना करते जाते हैं उतना ही आनंद बढ़ता जाता है। बस उस आनंद मे आनंद बढ़ाने के लिये ही ये पढ़ने लगे हैं। गौड़बोलेजी ने अनध्याय को छोडकर नित्य इनकी कुटी पर जाना आरंभ कर दिया है। साधारण लिखना पढ़ना सीख लेने के अनंतर उन्होंने पहले "विचार सागर" का मनन करवाया है, फिर "भगवद्गीता" का। किंतु इन दोनों का सीखना भी विलक्षण है। मानो ये पहले ही से उसे जानते हैं, पढ़ा हुआ पाठ भूल गए हैं सो पंडित गौड़बोले के पढ़ाने से पुरानी बातो का उन्हे स्मरण हो आता है। जिस विषय पर विचार करने मे और विद्यार्थियों को महीनों लग जायँ उसे ये दिनों मे अपने मन पर दृढ़ कर लेते हैं। भगवद्गीता के लिये ये

दोनों कहा करते हैं कि संसार में इसके बराबर कोई ग्रंथ नहीं। दुनिया के पर्दे पर ऐसा कोई अब तक पैदा नही हुआ जो इसके सिद्धातो को मिथ्या सिद्ध कर दे। इसमे प्रवृत्ति भी है और निवृत्ति भी। यह गृहस्थों के लिये भी है और संन्यासियों के लिये भी। इसका मनन करनेवाला दुनियादारी मे रहकर भी जीवन्मुक्त है। वस कर्तव्य की शिक्षा इसके समान किसी मे नहीं। काम, क्रोध, मोह, लोभ और मद मत्सरादि विषों से छुड़ाने के लिये यह रामबाण दवा है। कार्य करके भी न उसकी सिद्धि के लिये राग करना और न उसके प्राप्त न होने पर द्वेष। परमात्मा का स्वरूप इसमे बहुत अच्छी तरह दिखलाया गया है। हिंदूमात्र को इसे हिए का हार बना लेना चाहिए।

वस! इन्होने भगवद्गीता पढ़ लेने के अनंतर योग ग्रंथो को विचारना आरंभ किया है। योग साधन के लिये केवल वाचनिक शिक्षा किसी काम की नहीं। इसमे साधना अधिक और पढना कम और साधना का अभ्यास अच्छे गुरू के बताए बिना हो नहीं सकता। जो केवल पुस्तकों के भरोसे अथवा ऊटपटाँग गुरुओं से सीखकर प्राणायाम चढ़ाने लगते हैं उनमें भूल से अनेकों को मस्तक-विकार हो जाते देखा है, अनेकों को क्षय हो जाते देखा है और अनेकों का शरीर फूट निकलता है। श्वास को रोकना मतवाले हाथी को बाँधना है। गौडबोले यद्यपि इस विषय को विद्यार्थियों के चित्त पर ठसाने

की अच्छी योग्यता रखते थे और साधन से भी खाली नहीं थे किंतु उन्हे इस बात का दावा भी नहीं था कि मैं इस विषय में पारंगत हूँ। खैर जितना वह जानते थे उन्होंने इन दोनों को सिखाया। गुरु शिक्षा मे गौड़बोले की शिक्षा को संयुक्त कर इन्होने अभ्यास बढ़ाया और जो बात समझ मे न आई उसे किसी महात्मा से सीखने के लिये उठा रखा।

यों इन दोनों का समय अध्ययन, मनन और निदिध्यास-नादि में सदाचार के साथ वर्षों तक व्यतीत होता रहा। किसी प्रकार का विक्षेप नहीं, बिलकुल प्रलोभन नहीं। किंतु इस अवसर में एक घटना ऐसी हो गई जिससे इनके त्याग को कसौटी पर कसने का मौका आया। घटना ऐसी वैसी नहीं, बस "इस पार या उस पार" का मामला था। यदि उसे ग्रहण कर लिया तो संसार त्याग देने पर भी पक्का संसारी बनना पड़ा और छोड़ दिया तो एक सीढ़ी ऊँचे। बात यों हुई कि पंडित प्रियानाथजी ने एक दिन इस तरह प्रस्ताव किया—

"महाराज, आपको अपेक्षा तो नहीं है। जिसने संसार को तिनके के समान छोड़ दिया उसे अपेक्षा ही क्या? और आप अपना कार्य साधन भी कर रहे हैं परंतु इसके साथ यदि आपके हाथ से लोकोपकार भी हो तो कैसा?"

"हैं पिता! हम तुच्छ प्राणियों के हाथ से लोकोपकार? जब हम ही नहीं, जब हम लुहार की धौंकनी की तरह श्वास लेने पर भी मुर्दे हैं तब लोकोपकार कैसा? हाँ इस

मृतक शरीर से यदि चील्ह कौवे अपना पेट भर लें तो कुछ काम भी सही !"

"नहीं महाराज, आप जैसे तपस्वी यदि दुनिया का उपकार करना चाहें तो बहुत कुछ कर सकते हैं और यह शरीर परोपकार के लिये ही पैदा हुआ है। काम यह है कि एक जगह मठाधीश की गद्दी खाली हुई है। उनके शिष्य तो हैं परंतु इस योग्य नहीं हैं कि अपना कर्त्तव्य पाल सकें। इसलिये कितने ही धार्मिक सज्जनो ने किसी योग्य व्यक्ति को वह गद्दी दिलाने का उद्योग किया है। मेरी समझ मे आपसे बढ़कर योग्य नहीं मिल सकता इसलिये इस पद को स्वीकार कर सनातनधर्म की सेवा कीजिए, धार्मिक हिंदुओ का उपकार कीजिए और इस डूबती हुई नौका को पार उतारिए।"

"नहीं पिता! यह काम मुझसे नहीं हो सकता। "दो एक साथ न होवे रे भाया, इंद्रियाँ पोषणी और मोक्ष जाया।" ऐसा प्रस्ताव करके मुझे मत फँसाओ। प्रथम तो मैंने जन्म लेकर अभी तक किया ही कुछ नहीं फिर यदि कुछ बन भी पडा हो तो उसे धूल मे मत मिलाओ। जो दशा थोड़ो को छोड़कर आजकल के आचार्यों की, मठाधीशो की, स्थिर जीविका पानेवाले अपढ़ पुजारियों की और साधु वेशधारी मनुष्यों की हो रही है वही मेरे लिये तैयार है। ससार-त्यागियों को दुराचार मे प्रवृत्त करने के लिये इसको शराब समझो। बस इस काम मे पड़कर मैं दीन दुनिया दोनों का न रहूँगा। भाँग,

गाँजा, चरस, चंडू तो उनकी साधारण सेवा है किंतु अब छिप छिपकर बोतलें भी उड़ने लगी हैं। अकेले दुकेले स्त्रियों से बातचीत करना तो उनमे दोष ही नही समझा जाता किंतु अब उनमे से अनेको की व्यभिचार की, रंडीबाजी की भी शिकायत है। वे चोरी मे फँसते हैं, डकैतों की मदद देने का उन पर इलजाम लगता है और इनमे से यदि सब ही दोषो से किसी तरह बच जायँ, बचना कठिन तो है परंतु मान लीजिए कि बच भी जायँ तो द्रव्य सग्रह करने का, भोग विलास करने का, आडंबर बढ़ाने का और हुकूमत करने और औरो से पैर पुजवाने का क्या कम अपराध है ?"

"वास्तव मे आपने जो दोष बतलाए वे यथार्थ है। थोड़ो को छोडकर आजकल के आचार्यों, मठाधीशो और पुजारियो पर इस तरह के इलजाम लगते हैं और उनकी कितनी ही जगह सत्यता प्रमाणित होने से लोगों को कानून बनवाकर देवोत्तर संपत्ति सरकारी निरीक्षण मे डालने के लिये आंदोलन करने का हौसला हुआ है। जहाँ इस तरह का दोप उपस्थित हो जाय वहाँ राजा के हस्तक्षेप करने की आवश्यकता को मैं मानता हूँ। परतु गवर्मेंट विदेशी है। वह हजार मर्मज्ञ होने पर भी हमारे धर्म भावो को नहीं जान सकती इसलिये वह यदि कृपा करके इन बातों मे हाथ नही डालना चाहती है तो हमारा उपकार ही करती है। परतु आजकल के नवीन रोशनीवाले इसके पीछे आटा बाँधकर पड़े हैं। वे इस द्रव्य

से देशोपकार का कुछ भी काम करना चाहें, परंतु मेरी सम्मति यह है कि दाता ने जिस काम के लिये जो जायदाद दी है वह उसी काम मे लगनी चाहिए। गद्दी पर विद्वान्, धार्मिक, संयमी, जितेंद्रिय और सज्जन, निःस्पृही महात्मा के बैठने से संस्कृत की शिक्षा का प्रसार हो सकता है, शिष्यो को सदुपदेश मिलने का प्रबंध हो सकता है और यों धर्म-सेवा होने से उद्देश्य की सफलता हो सकती है।"

"जब संसार त्यागकर वैराग ही ले लिया तब उद्देश्य क्या? गेरुआ कपडे पहनकर, राख रमाकर, गुरू बनकर नाहक भेप को लजाना है। चौथे आश्रम को लातें मार मारकर नष्ट भ्रष्ट करना है। शास्त्र में संन्यासी के लिये इस तरह रहना कहाँ लिखा है?"

"शास्त्र मे यदि न हो तो न सही। संन्यासी का धर्म यही है कि वह वन के कंदमूलो पर अपना गुजारा करे, नित्य तीन घर से अधिक भिक्षा न माँगे, तीन दिन से अधिक एक जगह न ठहरे और इस तरह भिक्षा न ले जिसमे दाता का जी दुखे। जो कुछ मिल जाय उसे जल मे धोकर बिना स्वाद एक बार खा ले, दुनिया के रागद्वेष से अलग रहे और तत्त्वो का चितवन करता रहे। परंतु महाराज, समय के अनुसार इन मठाधीशो की भी आवश्कता आ पड़ी। दुनिया का जितना उपकार इनसे हो सकता है उतना गृहस्थों से नहो। बिचारे गृहस्थों को अपने पेट पालने से फुरसत ही कहाँ है? ऐसे

साधुओ को गोसेवा के लिये सबस बढकर सुविधा है। गॉव मे दस घर फिरकर आटा मॉग लाए, उससे चार टिक्कड बनाकर ठाकुरजी को भोग लगाया और दिन भर गोसेवा, ठाकुर-सेवा और भूले भटके मुसाफिरो के आतिथ्य के सिवाय कुछ काम ही नहीं। रात को भजन करना, लोगों को उपदेश देना और बालको को पढाना। भारतवर्ष में लाखो गॉव होगे। ऐसा कोई गॉव ही नही जहॉ मदिर न हो। बस जहॉ मंदिर है वहॉ देव-पूजा के साथ धर्मोपदेश का, धर्मशाला का, पाठशाला का और गोशाला का एक साथ काम निकलता था और खर्च केवल चार रोटी का। उस समय यह उपकार तो केवल छोटे मोटे मदिरो से, मठो से था किंतु बडे बड़े मठाधीशो, महतो और आचार्यों का उपकार वेहद था। उनको भोग विलास से बिलकुल वैराग्य था। कपड़े के नाम पर दो कोपीन, एक कंबल, वरतन के लिये तुबी, कठौती और खाने के लिये भगवान् का जो कुछ प्रसाद मिल जाय वही बहुत था। बस सवी सेवको से अथवा जमीन जीविका से जो कुछ इकट्ठा हो जाय वह या तो गौओ की सेवा मे, साधु महात्माओ के आतिथ्य मे अथवा आए गए के सत्कार के लिये। दिन रात इस बहाने से लोगो को सत्संग मिलता था, उपदेश मिलता था, अध्ययन मिलता था और दवा मिलती थी। जिस समय भारत मे इस तरह की व्यवस्था थी उस समय न धर्मसभाओ की आवश्यकता थी और न लेकचरबाजी की और न धर्म-

शालाएँ बनवानी पड़ती थीं। केवल इन्हीं की बदौलत, केवल गुरुकुलो ही के कारण विना खर्च के अथवा नाम मात्र का व्यय करके वह काम निकलता था जिसके लिये विश्वविद्यालयो मे, कालेजों मे, पाठशालाओं, अस्पतालों मे आजकल करोड़ों ही खर्च किया जा रहा है। वह शिक्षा असली शिक्षा थी, उसमे लोकव्यवहार के साथ धर्माचार था, उसमे आडबर का नाम नहीं और यह केवल दिखावटी, धर्महीन और व्यवहारशून्य। महाराज, मैं भी आपको फँसाना नहीं चाहता हूँ। आपको दबाकर मुझे स्वीकार कराना इष्ट नहीं है। जब आप प्रथम से ही दुनियादारी मे नहीं पड़े हैं, जब आपने भोग की विरियाँ योग ग्रहण कर लिया है तब आप भले ही इन झमेलो मे न पड़िए। परंतु महात्मा, अब समय वह आ पहुँचा है जिसमे आप जैसे त्यागियों को धर्मप्रचार के लिये, लोकोपकार के लिये त्याग का भी त्याग करना पड़ेगा। यदि आप चाहे तो इस पद को स्वीकार करने पर भी राजा जनक की तरह विरागी बने रह सकते हैं। आप जैसे जितेंद्रियो से, तपस्वियो से और महात्माओं से यह काम जितना हो सकता है उतना दुनियादार स्वार्थियों से नहीं, ढोल के अंदर पोलवाले आडंबरी लेकचरों से नहीं। और इसकी आवश्यकता भी बहुत बढकर है।"

"पिता! आपका कथन वास्तव मे हृदय मे हलचल मचा देनेवाला है। नि.संदेह बड़ा असर करनेवाला है। हाँ!

ऐसा करने की आवश्यकता भी है और कुछ काम भी हो सकता है परंतु (कोई दस मिनट तक आँखें मूँदकर विचार करने के अनंतर) मैं इस काम के योग्य नहीं। मुझसे यह काम न हो सकेगा। पिता! मुझे न फँसाओ।"

"अच्छा! आपकी इच्छा। आपको धन्य है। वास्तव मे आप न फँसना। अब मैंने समझ लिया कि आप धन के, अधिकार के और प्रशंसा के लालच मे आनेवाले नहीं। आप के पूर्व जन्म का संचय शीघ्र ही आपको पार लगा देगा।"

बस इसका उन्होंने कुछ जवाब न दिया। जितनी देरी तक इन दोनों का संवाद होता रहा साध्वी साधुनी, साधु महाराज की बहन चुपचाप सुनती रही। वह अध्ययन के सिवाय कभी कुछ बोलती भी नहीं थी। अब भी न बोली किंतु उनके मुख की मुद्रा से पंडित जी ताड़ गए कि भाई ने जो कुछ कहा है बहन की सम्मति से। इतना होने के अनंतर 'नमो नारायण" करके उन दोनो के चरणो को प्रणाम कर पंडित जी घर आ गए। इसके अनंतर क्या हुआ सो लिखने की आवश्यकता नहीं। हाँ दूसरे दिन पंडित जी भिक्षा लेकर जब उनकी कुटी पर गए तब वह जनशून्य थी। पंडित जी के दिए हुए वस्त्रो मे से एक लँगोटी, एक धोती और एक तुंबी के सिवाय सब वहीं पड़ा हुआ था। वह वहाँ उन महात्माओं के दर्शन न पाकर रो दिए। कल की बात पर उन्होने अपने आपे को बहुत धिकारा और आज से साधुसेवा

अच्छे गुर सुझा देना ही उनका काम है, और किसी बात से कुछ मतलब नहीं। कांतानाथ भी ऐसा आदमी नहीं जो "मन मानी घर जानी" करे। वह जो कुछ करता है सब अपने बड़े भैया से पूछकर उनकी आज्ञा के अनुसार। उसके काम काज की समय समय पर जब उनके पास रिपोर्ट पहुँचती है तब दो काम पंडित जी अवश्य करते हैं। एक उसके अच्छे कामों की प्रशंसा करके उसका उत्साह बढ़ाना और दूसरे यदि उसके हाथ से कोई चूक हो गई हो तो उस पर उसे धमकाना नहीं, उसे बुरा भला न कहना। यदि वह स्वयं अपनी चूक पर पछतावे और वह पछताता ही है तो "कुछ चिंता नहीं! जो काम करते हैं वे भूलते भी हैं। जो धंधा करता है उसके लिये नुकसान पहले और नफा पीछे।" कहकर वे उसका प्रबोध कर देते हैं। हाँ! समय पाकर उस भूल का कारण बताकर आगे के लिये वे उसे चिता भी दिया करते हैं परन्तु बड़े प्यार के साथ। इनके पिता ने यद्यपि दोनो भाइयो का वैमनस्य न हो इसलिये पहले ही से अच्छा प्रबंध कर दिया था किन्तु जहाँ राम भरत का सा स्वार्थत्याग मूर्तिमान विराजमान है वहाँ वैसे प्रबन्ध की आवश्यकता ही क्या? लड़ाई झगड़े वहाँ हुआ करते हैं जहाँ एक के स्वार्थ की दूसरे की गरज से टक्करें होती हैं। परन्तु पंडित जी के घर मे दोनों भाइयों का स्वार्थ दूध बूरे की तरह मिलकर एक हो गया। बहुस्नेह के दूध मे स्त्रियों की लड़ाई

की यदि खटाई पड जाय तो अवश्य दूध बूरा भी अलग हो सकता है परन्तु जहाँ प्रियंवदा श्रौर सुखदा सगी माँ-जाई बहनो से भी बढ़कर आपस में प्यार करती हैं वहाँ ऐसी खटाई का काम ही क्या ?

अस्तु ! इन लोगों की अच्छी निभती है । परमेश्वर ऐसी सबकी निभावे । जिस घर मे भाई भाई का, पति पत्नी का, देवरानी जेठानी का ऐसा प्यार है वहाँ अवश्य देवता रमण करते हैं । वह स्वर्ग से भी बढ़कर है ।

यो कांतानाथ घर के प्रबंध मे, जमींदारी मे श्रौर लेन देन मे मुस्तैद हैं श्रौर पंडित प्रियानाथजी की छुट्टी समाप्त होने मे केवल दो सप्ताह शेष रह गए । घर मे आकर इन्हे कितने ही काम करने थे परंतु यात्रा के कारण न पहले अवकाश मिला श्रौर न अब । उस समय जाने की उतावल रही श्रौर अब थक जाने से सुस्ताने ही सुस्ताने मे दिन निकल गए, यद्यपि घर आकर यह खाली एक दिन भी नही रहे । इन्होंने यहाँ आकर क्या किया सो विस्तार से प्रकाशित करने की आव कता नहीं क्योंकि गृहस्थ की छोटी मोटी बातें किसी से छिपी नहीं हैं । हाँ ! दो चार जो बड़े बड़े काम थे उनका दिग्दर्शन गत पृष्ठों में कर भी दिया गया है ।

अब अपनी नैाकरी पर जा पहुँचने के पहले पंडित जी के लिये केवल तीन काम शेष रह गए हैं । प्रथम प्रियंवदा श्रौर सुखदा की सौरी का समान रूप से प्रबंध करना । जब कांता-

नाथ वहाँ विद्यमान हैं तब इस बात की उन्हे चिंता नहीं परंतु स्त्रियाँ यो ही कोमल होती हैं फिर इन दिनो मे उनकी बहुत ही नाजुक हालत हो जाती है। जब बिना विशेष कष्ट के बच्चा होने पर नहा धोकर जच्चा उठती है तब उसका दूसरा जन्म माना जाता है। इसलिये अच्छी अनुभवी दाई का तलाश कर देना, उपयुक्त गृहों को पहले से सूतिकागृह के उपयोगी बना देना और इस काम के लिये जिन ओषधियों को, जिन पदार्थों की आवश्यकता होती है उन्हे पहले से सँभाल लेना। परमेश्वर न करे, कभी वैद्य की आवश्यकता आ पड़े तो इलाज के लिये गौडबोले जी वहाँ मौजूद ही थे। गौड़बोले की इच्छा थी कि "इन बातों का ज्ञान पहले से करा देने के लिये प्रियवदा को कोई पुस्तक अवश्य देनी चाहिए जिसे ढकर वह तैयार रहे और अपनी देवरानी को भी समझा दे। वह पोथी किसी अनुभवी स्त्री की बनाई हुई हो तो अच्छा।" परंतु हिंदी मे बहुत टटोल लगाने पर भी ऐसी पुस्तक का कहीं पता न चला और मराठो, गुजराती वह जानती नहीं इसलिये गौड़बोले को मन मारकर रह जाना पड़ा। हाँ! इतना अवश्य किया गया कि पंडित जी और गौड़बोले ने मिलकर कुछ नोट तैयार किए। उनसे जितना मतलब निकल सका उतना प्रियंवदा ने निकालकर संतोष कर लिया। इस तरह सब कामो की व्यवस्था हो गई और उसके अनुसार कार्य होकर जो परिणाम हुआ वह पाठकों ने गत प्रकरणों में पढ़ ही लिया। हाँ पंडित जी को भी

हिंदी मे इस प्रकार की स्त्रियों के उपयोगी पुस्तकें न मिलने से वहुत खेद हुआ और उन्होंने मराठा, गुजराती से भाषांतरित करके हिंदी में इस अभाव की पूर्ति करने का संकल्प भी कर लिया।

पंडित जी को यहाँ रहने के दिनों मे जो दूसरा काम करना था उसका सवंध गोरक्षा से था। उन्होने इस विषय मे चैावालोसवे प्रकरण मे जो राय देकर छोटे भैया के लिये सकेत किया था उसका हूबहू फोटो उनके सामने खड़ा हो गया। इनके यहाँ गोसेवा दो भागों मे बॅटो हुई थी। एक घर मे और दूसरी बगीचे मे। घर मे गृहस्थी के उपयोगी जो गौवें रहती थो उनकी सेवा का भार पहले सुखदा ने हो उठा रक्खा था और अब दोनो मिल गई। उनका दूध, दही, मठा और मक्खन ठाकुर जी के नैवेद्य मे काम आता है। उसमे से छॉछ मुहल्लेवाले को भा बाॅटी जाती है। गोबर और गोमूत्र घर को पवित्र करता है। जब उनके यहाँ नित्य ही वैश्वदेवादि यज्ञ होते हैं, और उनके लिये हर बात मे गोमाता की आवश्यकता है तब इस बात का तो कहना ही क्या? किन्तु नित्य प्रात.काल उठकर दोनो वहुएँ लिलाट पर रोली का तिलक लगाए, सैाभाग्य चिह्न धारण किए, दोनें मिलकर गधाक्षत से गोमाता का पूजन करती हैं। रात मे उठ उठकर वे इस बात की खबरदारी रखती हैं कि उनके वैठने की जगह गीली न रहने पावे। वे अपने हाथो से उनके सामने चारा डालती हैं और सानी करके उन्हें खिलाती हैं।

दूध दे तो सानी और न दे तो सानी। बारहों महीना सानी मिलती है। वे गाएँ साफ सुथरी नहाई, धोई, ऋतु के अनु-सार समय पर छाया मे और समय पर खुले मे रक्खी जाती है। बछडे बछिया हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ मानो हाथी के से बच्चे हैं। यदि वे बाजार मे भाग जायँ तो रस्ता बंद कर दें। आधे से अधिक दूध उनका और शेष घर खर्च के लिये होता है।

अपने घर की गौओ की ऐसी सेवा देखकर, उनकी हृष्टता पुष्टता देखकर और उनके दर्शन करके पंडित जी की कली कली खिल उठी। उन्होंने गोमाता को प्रणाम किया, उनकी स्तुति की और जब बगीचे की गौओ के जाकर दर्शन किए तब वे आनन्द मे मग्न हो गए। वहाँ मारवाडी नसल की कोई पचास गाएँ होगी। उनके साथ दस पंद्रह लूली, लँगड़ी, बूढी, ठाठ भी थीं किन्तु सबकी सब मोटी ताजी, शरीर पर मैल का नाम नहीं। दिन रात मे न्यार जितनी उनसे खाई जाय खायँ। उनका मन ही बैरी है। बाँटा सबको दिया जाता है। फूस के ही सही, कच्चे घर ही क्यों न हो परन्तु उनके रहने के लिये मकान तीनो ऋतुओ के योग्य हैं। एक ओर घास का गंज लगा हुआ है, कराई के ढेर पडे हैं तो दूसरी ओर खली और बिनौले से कोठे पर कोठे डट रहे हैं। उनको चराने के काम पर अलग, उन्हें निल्हाने, धुलाने और उनके बाँधने की जगह को साफ सुथरी रखने पर अलग नौकर हैं। गौएँ और बछड़े दो चार

घंटे के लिये चरने भी जाते हैं किन्तु गोशाला मे उनके लिये कमी नही है। उनका घी बेचा जाता है, दूध बेचा जाता है किंतु और से अच्छा होने पर भी बाजार भाव से महँगा नही दिया जाता। उनकी दवा दारू के लिये एक बक्स में ओषधियाँ भरी हुई हैं। जहाँ जरा सी एक गाय कुछ अनमनी दिखलाई दी उसके इलाज के लिये हलचल मच जाती है, और इस तरह स्वर्ग की देवी भगवती कामधेनु इस संसार मे आकर भी स्वर्ग-सुख प्राप्त कर रही हैं। पंडित जी ने इस प्रबंध को देखकर बहुत प्रशंसा करने के अनंतर एक त्रुटि बतलाई—"सॉड़ अच्छा नही है। जब तक नर अच्छा नही मिले संतान अच्छी नही हो सकती। मैंने तुम्हारे लिये एक अच्छे नर का प्रबंध भी कर दिया है। इस यात्रा मे एक जगह एक ऑकल कसाइयों को रुपया देकर छुड़ाया है। वह दो चार दिन मे आनेवाला है। लो यह लो।" कहकर उन्होने कांतानाथ को बिलटी दी और तब बोले—

"भैया तुमने यह काम छेड़ा है और इसमे सफलता भी होगी। न हो तो न सही। हमारा कर्तव्य है।"

"भाई साहब, इससे बढ़कर सफलता क्या होगी कि बस्ती भर मे आजकल गोसेवा की धूम है। यहाँ गाएँ तो सब गृहस्थी रखते ही हैं। जिनके यहाँ नही थी वे भी मँगवा रहे हैं। आस पास के गाँवों मे चार पाँच जगह ऐसी गोशालाएँ खुल गई हैं। लोग मुझसे आ आकर पूछ जाते हैं

और हमारा बिलकुल अनुकरण करते हैं। भगवान् के अनुग्रह से होड़ाहोड़ी का अवसर आ गया है "

"परंतु एक बात याद रखने की है। यदि इसमे वेपर्वाही करोगे तो पुण्य करते हुए पाप होगा। नरक के भागी होना पडेगा।"

"हाँ! मैं समझ गया। मैंने निश्चय कर लिया है कि इस गोशाला के बछड़े या बडे होने पर बैल ऐसे दुष्टो के हाथ न वेचे जायँ जो उनका अच्छी तरह पालन न करें, उनसे अधिक मेहनत लेकर पेट भर खाने को न दे, अथवा कसाई के हाथ अपने चौपायों को वेच दे। जिस पर मुझे जरा सा भी संदेह होता है उसे चाहे जितना नफा मिले मैं कदापि नहा देता हूँ। मैं लेनेवालो से प्रतिज्ञापत्र लिखवाकर हो सकता है तो जमानत भी ले लेता हूँ।"

"परंतु और लोग वेचे तो ?"

"इसका भी मै प्रवंध कर रहा हूँ। कोई सभा करके नहीं, किसी से लड़ झगड़कर नहीं, भिन्न धर्मियों को चिढ़ाकर सताकर नहीं किन्तु जो लोग यहाँ आते हैं वे सब यहाँ की स्थिति देखकर ललचाते हैं और स्वय अपनी इच्छा से प्रतिज्ञापत्र लिख जाते हैं, यहाँ तक कि कितने हो मुसलमान भाई भी इसको पसंद करने लगे हैं। वे स्वय प्रतिज्ञाएँ करते हैं, हमारी नकल करते हैं और इस तरह बर्ताव करने को तैयार हैं क्योकि उन्होनेसमझ लिया है कि अगर मुल्क से गाएँ नेस्त

नाबूद हो जायँगी तो दूध घी कहाँ से मिलेगा, खेती कहाँ से करेंगे और गल्ला कहाँ से पावेंगे? बल्कि अब वे यहाँ तक मानने लगे हैं कि हिंदुस्तान मे मॅहगी और कहत इसी वास्ते पड़ता है।"

"बड़े हर्ष की बात है। भगवान् तुम्हे सुयश दे। हाँ तो गोचारण की भूमि के लिये तो यहाँ कुछ कष्ट है ही नहीं?"

"नहीं बिलकुल नहीं। बल्कि राज्य इस काम के लिये बंजर के साथ अच्छी जमीन तक देने को तैयार है। जिस जमीन पर केवल गौओ की नार के लिये ज्वार की सूड की जाती है उस जमीन का लगान आधा लिया जाता है। अपने खर्च के लिये बेच दी जाय तो पूरा।"

"यह और भी तुमने अच्छी खबर सुनाई। बस परमेश्वर ने चाहा तो हमारे यहाँ अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टीड़ो, चोरभय और राज्यभय, यों छहो ईतियों की शिकायत न होगी। भले ही कोई करके देख ले।"

"बेशक!" कहकर गौओं की पीठ पर हाथ फेरकर, उन्हे पुचकारकर अपनी ओर से दो दो सेर के लड्डू उन सबको खिलाने के अनंतर इन्हे प्रणाम कर करके मन ही मन मगन होते हुए दोनों भाई अपने घर गए। तीसरी बात के विषय मे परामर्श करने का उस दिन इन्हे अवसर ही न मिला। दोनों भाई घर जाकर सायंकाल के नित्यकृत्य मे लग गए, देव-दर्शन मे लग गए और भोजन करके आराम करने लगे क्योंकि गोशाला से लौटती बार रात्रि अधिक हो गई थी। अस्तु!

प्रकरण—६२

नौकरी का इस्तीफा

जिस ख्याल से पंडित जी ने भाई की नौकरी छुड़वाई वही उनके लिये था। कदाचित् उससे भी बढ़ कर। उनके सध्यावदन अग्निहोत्र बलिवैश्वदेवादि नित्य कर्मों मे जब जब विघ्न पड़ता तब ही तब वह इस्तीफा दे देने को तय्यार होते। उन्होंने दो तीन बार दिया भी परंतु उनकी कार्यकुशलता, उनकी भलमनसाहत, उनकी सत्यनिष्ठा और उनकी ईमानदारी देखकर ऊपर के अफसरों ने मंजूर नहीं किया। वह पहले ही धर्मनिष्ठ थे और यात्रा ने और भी उनको दृढ़ कर दिया इसलिये उनकी इच्छा नहीं थी कि फिर जाकर नौकरी की चक्की मे पिसे। परतु छुट्टी से वापिस जाकर एक बार अपने पद का चार्ज लेना अनिवार्य था इसलिये उन्हे जाना पड़ा और वह गए भी परतु इस बार इस्तीफा देकर अपना पिंड छुडाने के लिये गए।

वह किसी जमादारी में कोर्ट आफ् वार्ड्स के मैनेजर थे। वहाँ का राजा अभी निरा बालक था। इधर उनमे ऊपर लिखे हुए गुण लबालब भरे हुए थे इसलिये अफसर उनसे प्रसन्न रहते थे और उनके आगे जब किसी की दाल नहीं गलने पाती थी तब अमला उनसे नाराज! इस कारण लोगो ने उन पर

मिथ्या मिथ्या अभिशाप लगाने मे भी कसर नही रक्खी। बुरे बुरे और गंदे गंदे इलजाम लगा लगाकर कभी "बंदे खुदा" के नाम से और कभी खुलाखुली शिकायते करवाई परंतु जो अपने सिद्धांतों पर अटल है उसका कोई बाल भी बाँका नही कर सकता। हर एक शिकायत मे, हर एक तहकीकात मे वह सौ टंच का सोना निकले। सोना ज्यों ज्यो तपाया जाता है त्यों ही त्यो निखर निखरकर उसका रंग, उसका मूल्य बढ़ता जाता है। बस इसी तरह उनका आदर बढ़ा और जो लोग उनका सर्वनाश करने के लिये उधार खाए फिरते थे वे ही उनके आगे लज्जित होने लगे, उनका अनुकरण करने लगे और उनके मित्र बन बनकर उनकी प्रशंसा का ढोल पीटने लगे।

जो कुछ वेतन उनका नियत था, बस उसी मे उनको संतोष था। किसी के यहाँ से कोई छोटी मोटी वस्तु यदि भेट सौगात मे आई अथवा बहुत दबाव पड़ने से किसी के यहाँ उन्हे दावत मे ही संयुक्त होना पडा तो यह रिश्वत नही है। यह हाकिमों का सत्कार माना जाता है। इससे दाता का मान बढ़ता है किंतु नहीं! उन्हे इन बातो तक की सौगंद थी। माई के लाल कितने ही ऐसे भी निकल सकते हैं जो इन बातों की सौगंद रखने पर भी हजारों के गट्ठे निगलने मे नहीं चूकते। हर एक आदमी के सामने पैसे पैसे के लिये हाथ पसारने से एक ही से इकट्ठा लेना भी अच्छा समझा जाता है। जमाने को देखते हुए वह भी बुरा नहीं समझा

जा सकता। जो किसी को सताकर न लेवे और जो मिल जाय उस पर संतोष कर ले, यह एक प्रकार की दूध भिक्षा कही जाती है किंतु पंडित जी को इन कामों की शपथ ही ठहरी तब जैसी एक पाई वैसे ही दस हजार। एक दिन रात्रि के समय इनको अकेला पाकर एक आदमी आया। उसने आकर कान उठाए, इधर उधर ताककर, आँखो से आँखें मिलाए बिना, कुछ झिझककर, डरते डरते इनके सामने जय-पुरी अशर्फियों का ढेर कर दिया। देखते ही इनकी आखें खुलीं। इन्होंने एक बार सिर से पैर तक उस आदमी पर नजर डाली, फिर उस ढेर को घूरकर अच्छी तरह देखा और तब यह उस आनेवाले से कहने लगे, किसी तरह के राग द्वेष से नहीं किंतु योंही, स्वभाव से इन्होंने कहा—

"क्यो भाई! आज यह क्या?"

"साहब, यह आपके वास्ते मेरी तरफ से एक अदना सी नजर है। मामला आपको मालूम ही है। बस यह जान आपके हाथ मे है चाहे जिलाओ, चाहे गर्दन ही क्यों न उड़ा डालो।"

"हाँ! मामला मुझे मालूम है और तुम भरोसा रक्खो कभी तुम्हारे साथ अन्याय न होगा। परंतु इनकी कोई आवश्यकता नहीं। इन्हे ले जाओ और फिर कभी मेरे सामने ऐसी बात का नाम तक न लेना।"

" हाँ ! मैं जानता हूँ कि आपको इन बातों की कसम है लेकिन दस हजार है। एकदम इतनी रकम देनेवाला कोई नही मिलेगा और इस पर मेरी जिम्मेवारी है कि फरिश्तों को भी इस बात की खबर न हो। आप मुझे जानते ही हैं। मैं सिर कटने तक अपनी जबान का पाबंद हूँ। बस भरोसा रखिए और मंजूर कीजिए।"

" बेशक आपका कहना ठीक हो सकता है परंतु जैसे इतनी रकम का देनेवाला कोई नही मिलेगा वैसे ही दस हजार रुपए पर पेशाब करनेवाला भी आपको नहीं मिलेगा। अभी इनको लेकर तशरीफ ले जाइए और आयन्दा इन कामों के लिये मुझे मुँह न दिखलाइए।" बस पंडित जी के मुँह से ऐसे दृढ़ किंतु कठोर वाक्य निकलते ही वह झटपट अशर्फियों को दुपट्टे मे बाँधकर गालियाँ देता हुआ लजाकर वहाँ से चल दिया। इनकी ईमानदारी के कोड़ियों नमूनो मे से एक यहाँ लिख दिया गया। हंडे के एक चावल को मसकने से सबकी जब परख हो जाती है तब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

यों पंडित जी केवल निर्लोभ हों सो ही नहीं। कितने ही पराए पैसे से घृणा करनेवाले लँगोट के कच्चे निकल आते हैं। परंतु जैसे प्रियंवदा का दृढ़ पातिव्रत उदाहरणीय था वैसे ही यह भी "पर तिय मात समान" की प्रतिमूर्ति थे। इस नौकरी मे इनको केवल रुपया दिखाकर ललचानेवाले मिले हों तो खैर परंतु अच्छी रूपवती युवतियों से एकांत मे

मिलने का भी इनके लिये अवसर आया। परंतु मजाल क्या जो यह उनकी ओर आँखें उठाकर तो देख ले। इन्होंने माता या भगिनी का संबोधन करके उनको झेपाया, उनसे गालियाँ खाईं और इतने पर भी वे वहाँ से न डिगी तो या तो स्वयं ही वहाँ से सटक गए अथवा किसी नौकर चाकर को बुलाकर अपने सिर की बला टाल दी। अवश्य ये ऐसी युवतिया होंगी जो लगभग या पूरी बिगड चुकी हों क्योंकि व्यभिचारिणी स्त्री भी कभी अपनी ओर से प्रस्ताव नहीं कर सकती है। इसलिए प्यार पाठक यदि इन्हे "विपत्ति की कसौटी" की मुलिया मान ले तो उनका दोष नहीं किंतु नहीं जब इनको रूप हो भगवान् ने ऐसा दिया था जिससे स्वभाव ही से एक युवती का इनकी ओर मन आकर्षित हो, इन्हें देखते ही उसके हाथ पैर ढीले पड जायँ, इनकी मूरत ही कामदेव को जगा देने के लिये मोहनी मंत्र हो तब केवल इतने ही पर इस बात की इतिश्री न कर देनी चाहिए। इसके नमूने के लिये दो चार उदाहरण लिखे जा सकते हैं। परतु इस काम के लिये कम से कम दो चार प्रकरण चाहिएँ और यह पोथी बढ़ते बढ़ते पहले ही पोथा बन चुकी है इसलिये उन बातों की कल्पना करने का भार पाठकों पर है।

पंडित जी मे जैसे इस प्रकार के अनेक गुण थे वैसे ही साम्राज्य के, राज्य के, मालिक के और प्रजा के शुभचिंतक भी वह एक ही थे। "नमक का हक अदा करना" उनका दृढ

सिद्धांत था। इसके लिये अपने प्राण तक न्योछावर कर देना वह बड़ी बात नहीं समझते थे। ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में परमेश्वर के अनुग्रह से यदि ऐसा अवसर ही न आवे तो इसको वह क्या करें किन्तु वह तन से, मन से और धन से कभी दूसरे का अप्रिय, अहित नहीं करते थे और जहाँ तक बन सकता था नहीं होने देते थे। इससे पाठक समझ सकते हैं कि जो काम उनके सिपुर्द किया गया उसका उन्होंने कैसा प्रवन्ध किया होगा! प्रायः अमलेवाले इस बात की शिकायत किया करते थे कि वह सजा कड़ी देते हैं किन्तु वह अपराधी को योग्य दंड देकर बदमाशों को ठिकाने ले आए थे इसलिये प्रजा उनकी वाहवाही करती थी। क्षमा-शीलता का भी वह एक नमूना थे। किसी ने क्रोध में आकर उन्हें गाली दी, कोई उन पर आक्रमण करने को तैयार हो गया अथवा किसी ने पत्थर उठाकर मार ही दिया। इस पर उनका अर्दली का सिपाही उसकी गति बनाने को तय्यार हुआ परंतु लाल लाल आँखें निकालकर "नहीं! हरगिज नहीं! खबरदार हाथ उठाया तो!" कहकर उन्होंने उसे रोका और "भोला है! समझ नहीं है! बोल बोल तुझे कष्ट क्या है?" कहते हुए उस मारनेवाले को उलटा लज्जित कर दिया।

ऐसी दशा में यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस समय उन्होंने इस्तीफा दिया सब ही को कितना कष्ट हुआ होगा। हाँ उनका इस्तीफा बड़ी कठिनता से स्वीकार हुआ।

और यों इतने वडे काम को, इतने वड़े अधिकार को, इतने वड़े वैभव को तिनके की भांति तोड़कर वह अपने घर आ बैठे। जहाँ उन्होंने नौकरी की वहाँ अब भी उनका आदर है, अब भी छोटे वड़े सब लोग इन्हे चाहते हैं। अच्छी नौकरी करने का, शुभचिंतकता करने का यह एक छोटा सा आदर्श है। पाठक पाठिकाओं के अंतःकरण पर अच्छा प्रभाव डालने के लिये यदि उनकी इच्छा हो तो इस खाके के सहारे, यथेच्छ लौट फेर करके वे अच्छी तस्वीर तय्यार कर सकते हैं। यहाँ इतना अवश्य लिख देना चाहिए कि जब तक पंडित प्रियानाथ डाक विभाग मे रहे तब तक भी उनका इन बातों में, अपना काम अच्छी तरह अंजाम देने से, सुयश रहा और इधर आ जाने बाद भी वर्द्धमान कीर्ति।

प्रकरण—६४

व्यापार में सत्यनिष्ठा

पँडित जी जब नौकरी पर जाने लगे तब छोटे भैया से कह गए थे कि "देशी माल की एक डाइरेक्टरी तैयार कर लेना। जहाँ तक बन सके यह काम जल्दी हो जाना चाहिए ताकि जो उद्योग करना विचारा है उसका आरभ मेरे वापिस आते ही कर दिया जाय। डाइरेक्टरी को तीन हिस्सों में विभाजित करना। एक मे कलों से तैयार होनेवाले समस्त पदार्थों का समावेश किया जाय, दूसरे मे सब प्रकार की देशी कारीगरी जो हाथ से तैयार की जाती है और तीसरे मे उन पदार्थों की नामावली दर्ज होनी चाहिए जो किसी दिन बड़े नामी थे किन्तु समय ने, सहायता के अभाव ने अथवा मिल उद्योगों ने तथा विलायती माल ने उनका बनना बन्द कर दिया है। हाँ इस बात का अवश्य ख्याल रखना होगा कि वह माल उत्तेजना देने से अब भी तैयार हो सकता है या नहीं! जहाँ तक बन सके नमूनों का भी संग्रह कर लेना।" कहने मे यह बात जितनी सीधी दिखलाई देती है करना उतना ही कठिन मालूम पड़ा। युरोपियन सज्जनों की बनाई हुई डाइरेक्टरियो से पहला हिस्सा तैयार करने मे विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा। दूसरे और तीसरे भाग के लिये मराठी

भाषा के "व्यापारी भूगोल" से और मिस्टर मुकरजी की अँगरेजी किताब से तथा "भारत की कारीगरी" से मदद अवश्य मिली परंतु ये सब की सब कुछ कुछ पुरानी पड़ गईं और इस पुस्तक मे आज दिन तक की उन्नति का समावेश होना चाहिए। यदि समाचारपत्रो के विज्ञापनों का सहारा लिया जाय तो प्रथम तो उनमे ताकत की दवा और काम-संजीवन, सोजाक तथा उपदंश की रामबाण दवाओ की भर-मार, देशी कारीगरी के नोटिस ही बिरले फिर कितने ही लोगों की नस नस मे बेईमानी यहाँ तक भरी हुई है कि विलायती माल को देशी बतलाकर बेचते हैं, उसका ट्रेड मार्क बदल देते हैं, विलायत से ही देशी नाम का ट्रेडमार्क लगवाकर तथा बन्द माल मँगवा लेते हैं और देशी और विलायती को मिलाकर देशी के नाम से बेचते हैं। यदि विलायती बारीक सूत से देशी धोती जोड़े बनाकर उन्हे देशी के नाम से बेचा जाय तब भी गनीमत है। उनमे कुछ तो देशीपन है परन्तु इस तरह की धोखेबाजी देखकर कांतानाथ एक बार घबड़ा उठे। उन्होने इस काम के लिये समाचारपत्रो मे नोटिस भी दिए किन्तु व्याख्यानबाजी से परोपदेश करने के आगे किसी को अवकाश ही कहाँ? तब इन्होंने कुछ खुशामद करके, कुछ दे दिलाकर और कुछ लोकोपकार समझाकर कितने ही आदमी ऐसे खड़े किए जिन्होने इस काम मे सहायता करके उसे संग्रह किया। यों जिस समय पंडित जी इस्तीफा देकर अपने घर

आए, उन्हे बहुत ही उत्तम तो नही परंतु जैसी तैसी डाइरेक्‌री तैयार मिल गई। पंडित जी इसके साथ नमूनों का संग्रह देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कांतानाथ को शाबाशी देकर यहाँ तक कह दिया कि—

"करनेवाला तो परमात्मा है परंतु आशा है कि सफलता होगी। इसके लिये सबसे बड़ा काम यही था जो तुमने कर लिया।"

"सब आपके अनुग्रह से, आपके प्रताप से और आपके उपदेश से। काम क्योंकर करना, सो पहले ही मैं आपको लिख चुका और अब भी सक्षेप से सुना दूँगा। अभी तक इस काम के लिये तीन सौ तेतीस तेरह आने तीन पाई खर्च हुआ है। और काम छेडते ही रुपए की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिये अभी दस हजार रुपए चाहिएँ। यह रकम कम से कम है। ज्यो ज्यो काम बढेगा त्यो त्यों रुपए की आवश्यकता बढेगी किंतु मैं घर मे से एक पाई भी नही दे सकता। जितना रुपया था वह अभी इधर उधर व्यापार धंधे मे, जमींदारी मे लगा हुआ है। उधर से रुपया खैचना अध्रुव के भरोसे ध्रुव आय को, निश्चित आमदनी को बिगाड़ देना है। परमेश्वर करे इस उद्योग मे सफलता हो और आपके प्रताप से लाभ ही होगा परतु.. .. .."

"हाँ! परतु कहकर रुक क्यों गए? यही कहोगे ना कि रुपया चाहिए। वेशक! सबसे पहले आवश्यकता रुपए

की है। आजकल दुनिया में रुपया ही सब से बड़ी चीज समझी जाती है। लोग कहते हैं कि "रुपया खुदा का बच्चा है" परंतु अब तो स्वार्थी जीवों ने उसे खुदा का बाप तक मान लिया है। खैर! इसके लिये पांच पांच रुपए के शेअरों से कंपनी खड़ी कर सकते हैं। युरोपवालों को इस उद्योग से ही बड़ा लाभ हुआ है परन्तु भारत की कंपनियाँ पनपती नहीं। ईश्वर की कृपा से अब इस प्रकार का उद्योग उन्नति पर है। इस उद्योग से "पांच जने की लाकड़ी और एक जने का बोझ।" किसी पर विशेष बोझा नहीं पड़ता और अनायास रुपया इकट्ठा हो जाता है परन्तु प्रथम तो मिलकर काम करने की भारत-वासियो मे आदत नहीं। दूसरे हम लोगों मे सत्यनिष्ठा की मात्रा बहुत घट गई है। बेईमानी आगे और सचाई पीछे। तीसरे अभी तक हम लोग इस उद्योग मे युरोपियनो के समान दक्ष नहीं हुए हैं। इस कारण अपने अनजानपन से ऐसी ऐसी भूले कर बैठते हैं जिनके कारण चढ़ने के बदले गिरते हैं, नफे की जगह टोटा उठाते हैं। और चौथे यह कि परदेशी व्यापारियों के जोर से उनके स्वार्थ मे विघ्न न पड़ने पावे इसलिये हमारे यहाँ के कायदे कानून भी हमे ऐसे उद्योगो की उत्तेजना देने के स्थान मे अधिक अधिक जकडते हैं। कंपनियों के ठीक ठीक न पनपने के, जन्म लेकर नाश हो जाने के, दिवाले पड जाने के ऐसे ही अनेक कारण हैं। इसलिये इस कार्य के लिये कंपनी खड़ी करना मैं अभी उचित नहीं समझता।"

" तब ? "

" वास्तव में तुम्हारे " तब " का जवाब बड़ा मुशकिल है। भारतवर्ष भर मे प्रसिद्ध है कि " साँझे की तो होली अच्छी जिसे जला दिया जाय। " हम लोगों की आदत ही नहीं है कि साँझे मे काम करके उसे पार उतार ले जायँ। भारतवर्ष उद्योगशील अँगरेजो की छत्रछाया मे आकर जिन कारणो से अब तक दरिद्री बना हुआ है उनमें एक यह भी है कि हम लोग मिलकर काम करना नहीं जानते। परमेश्वर के अनुग्रह से अब सीखने लगे हैं और सफलता भी प्राप्त करते जाते हैं परंतु यहाँ जो कार्य एक व्यक्ति की बुद्धि से, बल से, विद्या और पुरुषार्थ से हो सकता है वह अनेक से नहीं। यदि एक अगुवा बनकर समुदाय को अपनी ओर झुकाना चाहे तो सहज मे झुका सकता है। " दुनिया झुकती है झुकानेवाला चाहिए। " किंतु जहाँ दस आदमी मिलकर काम करते हैं वहाँ आपस मे खैंचातानी होती है, थुक्का फजीहत होती है। "

" हाँ! आपका कथन यथार्थ है परंतु तब ? "

" घबड़ाओ मत! मैंने पहले ही से सोच लिया है! यदि पहले से इसका निश्चय न कर लेता तो अभी इस काम मे हाथ न डालता। इतना परिश्रम और इतना खर्च ही क्यों करवाता ? "

" हाँ सो तो मुझे भी निश्चय है। परंतु ? "

"अभी दस हजार के बदले पाँच ही हजार से कार्य आरंभ कर दो। पिता जी के प्रताप से परमेश्वर की कृपा से धधे पर तुमको रुपया मिल जायगा। कंपनी के नाम का, विज्ञापनवाजी का, और ऐसे ही और तरह का आडंबर बिलकुल मत करना। आडंबर लोगों को ठगनेवाले करते हैं। झूठे व्यवहारवाले को अपनी सचाई जतलाने के लिये ऐसे ऐसे ढोग करने पड़ते हैं। आरभ मे चाहे नफा कम मिले, चाहे प्रसिद्धि देर से हो और काम धीरा ही क्यो न हो परंतु व्यापार मे सत्यनिष्ठा सब से बडी सहायक है। यदि तुम थोडा नफा लेकर, एक ही भाव पर, घटाए बढ़ाए बिना नियत मूल्य पर नक़द दामो से माल बेचोगे, यदि लोगों को विदित हो जायगा अथवा यो कहो कि तुम ग्राहको के मन पर यह जमा सकोगे कि तुम्हारे यहाँ झूठ का नाम तक नहीं है, यदि एक बच्चा तुम्हारे यहाँ लेने आवे तब भी वही भाव और बडा आवे तब भी वही, तो लोग दौड दौड़कर तुम्हारे यहाँ आवेगे। हर एक चीज पर उसकी खरीद की मिती और असली कीमत खर्चे समेत लिखकर चिट चिपका दो। खरीदार स्वयं उसके अनुसार दाम देकर ले जायगा। भाव ठहराने का बिलकुल काम ही नही। जब तुम उधार किसी को दोगे ही नही तब रुपया डूबने का काम क्या? माल वही मँगवाना जिसकी बिक्री हो। जब औरों की तरह तुम अनाप सनाप नफा न लोगे तब तुम्हारा माल अवश्य सस्ता पड़ेगा।

देशी माल टिकाऊपन के लिये प्रसिद्ध है। एक बार चाहे खर्च कुछ अधिक पड़े परंतु फिर फटने का, टूट जाने का और बिगड़ जाने का नाम तक नहीं जानता! ये बातें तुम जब लोगों के चित्त पर ठसा दोगे तब तुम्हारी दूकान से माल खरीदते हुए और जगह कहीं भी ग्राहक न जायँगे।"

"और दूकान का नाम?"

"दूकान का नाम "राधानाथ रमानाथ।" वही दादा जी और बापू जी का नाम। सब प्रताप उन्हीं का है।"

"उत्तम है। परंतु क्यों जी भाई साहब! जब माल पर खर्चे समेत असली कीमत लिख दी जायगी तब व्याज?"

"दो महीने का व्याज तो खर्चे मे शामिल कर देना और कोई चीज सिवाय दिनों तक पड़ी रह जाय तो उसके लिये हो चिट पर मिती लिखना है।"

"अच्छा! और माल बिका हो नहीं तो उसका टोटा कहाँ से निकलेगा?"

"बिके हुए माल के नफे से। और न भी निकले तो भुगतना। तुम्हारी दूकान की मखमल का घाटा गजी खरीदने वाला क्यो भुगते?"

"बेशक! ठीक है। अब रुपए का ही सवाल बाकी है।"

"पाँच हजार रुपया तुम्हारी भाभी का बैंक मे जमा है। उसे उसके नाना के यहाँ से मिला था। व्याज मिलाकर कोई सात आठ हजार हो गया है। आज कल बैंकों के

दिवाले भी बहुत निकलते हैं। देशी व्यापार और देशी कारीगरी की उन्नति के लिये ही बैंकों मे जमा करना है और वही काम तुम करना चाहते हो। बस इसलिये तुमको रुपया उधार नही लेना पडेगा। बस भाभी सेठ और देवर गुमाश्ता। उससे पूछ लेना।"

"हैं। क्या मैं सेठ? (दोनों के बीच से बात काटकर) क्या वह रुपया अभी तक बैंक मे ही जमा है? मैं तो भूल ही गई थी। पर मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता आ पड़ी? मेरा उससे कुछ वास्ता नहीं। मैं कुछ नहीं जानती। आपके मन मे आवे सो करो। मेरा वास्ता तो आपके चरणारविंदो से है। मुझे रुपयो से क्या मतलब?" प्रियवदा के मुख से इतने वाक्य निकलने पर पंडित जी "बेशक ऐसा ही है और होना भी चाहिए किंतु वह स्त्री-धन है, तेरे नाना का दिया हुआ है इसलिये तेरी राय ले लेना आवश्यक था। और जब तू घर मे (कुछ मुसकुराकर) बड़ी बूढ़ी है तब घर के कामो मे भी तुझसे सलाह ली जाय तो अच्छा हो है।" कहकर चुप हो गए और "हाँ! हाँ!! भाभी सेठ और मैं गुमाश्ता। इस धंधे की सब बाते तुमसे पुछ पूछकर करूँगा।" कहते हुए कातानाथ ने भाई साहब की बात का अनुमोदन किया। "बेशक मेरी भी राय है।" कहते कहते प्रियवदा का मुँह दोनों बालकों ने आकर पकड़ लिया। "अम्मा दूध! अम्मा चीनी! अम्मा मिठाई!" की रट लगाकर अम्मा को वहाँ से

दोनों बालक पकड़ ले गए। न उन्होंने अम्मा को एक शब्द बोलने दिया और न किसी की कान पड़ी बात सुनने दी। पंडित जी ने उन्हें अपने पास बहुतेरा बुलाया किंतु अम्मा की गोदी छोडकर उनके पास एक भी न आया। और लाचार होकर प्रियवदा को वहाँ से उठ जाना पड़ा। वह गई और अपनी रेशमी नई निकोर साड़ी पर धूल मे सने हुए दोनों बच्चो को दहनी और बाईं गोदी मे चढ़ाए हुए ले गई। इस प्रकार की लीला समाप्त होने पर प्रियानाथ ने कांतानाथ से कहा—

"बस रुपयों का तै हो गया! अब कर्तव्य यह है कि गौड़बोले महाशय से शुभ मुहूर्त पूछकर कार्य का आरंभ कर दो। "शुभस्य शीघ्रम्।" जब मसाला तैयार है तब जितनी ही जल्दी की जाय अच्छा है।"

"बेशक! परंतु एक बार व्यवस्था पर फिर गौर कर लेना चाहिए। मेरा विचार इस कार्य को तीन हिस्सों में बाँट देने का है। भारतवर्ष की मिलों का बना हुआ कपड़ा अथवा और और सामान बिक्री का ढंग देखकर कमीशन सेल पर अथवा अधिक बिक्री होती हो तो खरीदकर मँगवाया जाय। पहला हिस्सा तो यही समझना चाहिए। दूसरे हिस्से मे दस्ती कारीगरी है। हाथ के बने कपडे, बरतन आदि के जितने नमूने इकट्ठे हुए हैं उनमे से जो अवश्य ही बिक जाने योग्य हैं उनको तो थोड़ा थोड़ा मँगवा ही लेना और बाकी बचे हुओं को काँच की अलमारियों मे प्रदर्शनी के लिये दूकान में

सजाकर रखना। उन्हें लोगों को दिखाकर खरीदने की उत्तेजना देना। तीसरा काम इन दोनों से भारी है। उसमे खर्च और मेहनत दोनों की आवश्यकता है। परंतु साथ ही वह काम भी बहुत जरूरी है।"

"हाँ! मैं समझ गया। वास्तव मे बहुत आवश्यक है। काम को छोटे किंतु दृढ़ पाए पर आरंभ करना चाहिए। पहले, सबसे पूर्व मालपुरे और टौंक के नमदे हो लो। वहाँ नमदे और घूगियाँ अब भी बहुत नफीस बनती हैं। बनानेवाले अपढ़ बेशक हैं परतु हैं कारीगर। उन्हे थोड़ा बहुत सिखाने से वे नमदे तो नमदे किंतु फेल्ट टोपिया भी अच्छी बना सकते हैं।"

"वास्तव मे यही मेरा संकल्प था और मैंने इसके लिये साँचे भी बनवा लिए हैं और रंग भी उन पर पक्का जमने लगा है।"

"शाबाश (साँचे और रंग का नमूना देखकर) बहुत अच्छा हुआ।"

"इसी तरह बीकानेर की लोई, कोटे के डोरिये, बूँदी का रग और ऐसा कोई रजवाड़ा नही जो किसी न किसी तरह की कारीगरी के लिए प्रसिद्ध न हो। जयपुर तो कारीगरी के लिये केंद्र ही ठहरा।"

इस तरह की सलाह करके जो ठहराव हुआ उसके अनुसार कार्तिक सुदी से अजमेर मे वहीं " राधानाथ रमानाथ"

के नाम पर शास्त्र-विधि से गणेश-पूजन करके दूकान खोल दी गई और जब कांतानाथ जैसे व्यवसायी का प्रबंध था, जब पंडित जी जैसे अनुभवी का निरीक्षण था और जब सत्यनिष्ठा ही इनका मूल मन्त्र था तब सफलता होने मे आश्चर्य क्या? पंडित जी के मनोराज्य मे सफलता अवश्य हुई और सो भी ऐसी कि जिसकी नकल जगह जगह होने लगी। नकल होने से ये लोग नाराज नही हुए। पंडित जी ने स्पष्ट ही कह दिया कि—"हमारे अनुभव से यदि लोग लाभ उठावे तो हमारा सौभाग्य! ऐसे कामों की नकल होने ही मे देश का कल्याण है। हमने इसी लिये नमूना खड़ा किया था"

यदि पाठक चाहे तो इसका अनुकरण करके लाभ उठाने का उन्हे अधिकार है। उन्हें अवश्य ऐसी दूकाने खोलनी चाहिएँ।

प्रकरण—६५

प्रेत का मोक्ष

"क्या जी! तव आपका वहम अभी तक नहीं निकला? जब जिक्र आता है तब ही "आबू के साधु" का नाम लेकर आप ताना दिया करते हैं। क्या सचमुच ही आपको सदेह है? अथवा विनोद के लिये?"

"वहम और विनोद, परस्पर शत्रु हैं। जहाँ वहम वहाँ विनोद नही और जहाँ विनोद वहाँ वहम का काम क्या? परंतु यहाँ वहम भो है और विनोद भी है। जो हैं तो दोनो हैं और नही तो दोनो नही। अथवा कभी एक और कभी दूसरा।"

"वाह! सब कुछ कह दिया और कुछ भो नही कहा। आपके ऐसे तर्क से मैं गँवारी क्या समझूँ कि आपके मन मे क्या है? पहेली न बुझाइए। साफ कहिए कि आपके मन मे क्या है? इस दासी को अच्छी तरह समझा दीजिए कि आपके मन मे क्या है? आप विनोद से कहते हैं और मेरे ऊपर सौ घड़े पानी पड़ जाता है।"

"अच्छा! तू ही कह कि मेरे मन मे वहम है अथवा विनोद? जब मेरे दिल का तेरे दिल में टेलीफोन है तब तू स्वयं सोच सकती है कि वहम है या विनोद! तैंने तो दावा किया है न कि तू दूसरे के मन को पहचान सकती है?"

"बेशक ! दावा किया है और अब भी मेरा दावा है। मैंने उसके हाव, भाव और कटाक्ष से जान लिया था कि उसका मन निर्विकार है। जैसा तप उसके मुख पर वरुणा गुफा के निकट झलकता था वैसा ही आबू पर। फिर आप भी तो बतलाइए कि वह कहाँ तक निर्दोष था ?"

"हाँ ! मैंने मान लिया, मैं पहले ही से मान रहा हूँ कि तू निर्दोष है और जब तू दृढ़ है तब यदि उसका मन भी विचलित होता तो वह तेरा कर ही क्या सकता था ? परंतु तेरे मन मे संकल्प भी क्यो हुआ कि उसके पास रात्रि मे जाना चाहिए और सो भी बेटा माँगने के लिये ?"

"संकल्प बेशक हुआ। और हुआ भी इसी लालसा से किंतु बूढ़ी माँ के परामर्श से हुआ और आपको और उन्हे साथ ले जाने के इरादे से। इरादा वास्तव मे हुआ और सो भी नारी-हृदय की उस अलौकिक वासना के कारण। पुरुषों की अपेक्षा रमणियो को अपनी संतान पर अधिक प्रेम होता है। स्त्रियों की सृष्टि ही इसलिये है कि प्रजा की वृद्धि हो। विवाह ही संतान की उत्पत्ति के लिये किया जाता है। माता ही पिता की अपेक्षा संतान पैदा न होने से, गर्भ की यंत्रणा से, प्रसव की वेदना से और संतान के लालन पालन मे अधिक कष्ट पाती है किंतु स्नेह भी उसका अलौकिक है, अमानुषी है, दैवी है। यदि दैवी नही है तो पशु पक्षी अपनी संतान का लालन पालन किस सेवा के लिये, किस कमाई के लिये करते हैं। केवल

संतान के लिये नारियाँ न मालूम क्या क्या कर डालती हैं, ताजियों के नीचे निकलती हैं, पीर पैगंबरों को, भूत प्रेतों को, कबरों और मसानों को पूजती हैं। यदि आप थोड़ी देर के लिये रमणी बन जायँ तब आपको हमारा हृदय मालूम हो सके।"

"नारी न बनने पर भी मैं हृदय से उस अलौकिक वासना का अनुभव कर रहा हूँ। नारी भी तो एक बार तू बना चुकी है किंतु वासना वही करनी चाहिए जो अपने हाथ हो, उपाय वही करना चाहिए जो निर्दोष हो।"

"वासना बेशक मेरी थी और उसका नतीजा भगवान् के हाथ था। और मनुष्य की यावत् वासनाओं का परिणाम परमेश्वर के अधीन है। जब स्त्री जाति में संतान उत्पन्न करने की स्वाभाविक वासना है तब मैंने भी की तो बुरा क्या किया? संतान बिना गोद सूनी, घर सूना और कुल सूना पाकर और अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिये, अपना जीवन सार्थक करने की इच्छा से मैंने वैसा किया था।"

"वास्तव में सत्य है। मैंने मान लिया कि तेरी इच्छा निर्दोष थी परंतु जो उपाय तैंने सोचा था वह उचित नहीं था। भयंकर था। उसका परिणाम शायद यहाँ तक हो सकता था कि हम दुनिया में मुँह दिखाने योग्य न रहते।"

"हाँ यह मेरी भूल है। यों तो मेरा इरादा आपको साथ लेकर जाने का था। आपकी सहगामिनी रहने में भय नहीं किंतु इरादा भी करना अच्छा नहीं।"

"खैर ! तैने अपनी भूल स्वीकार कर ली। तब मैं पूछता हूँ कि यदि वह निर्दोष था तो उसने रात्रि को तुझे क्यो बुलाया ?"

"उसका चेहरा निर्विकार था, तप उसके मुख के भाव से टपका पड़ता था इसलिये मानना पड़ेगा उसने मुझे बुरी नीयत से नहीं बुलाया। उसने बुलाया था मंत्र देने के लिये और दिन से अवकाश न मिलने से, आह्निक के निपट जाने पर रात्रि के समय देने के लिये। तिस पर भी मैं भूल स्वीकार करती हूँ। भूल जगज्जननी जानकी से हुई है। मैं बिचारी गँवारी किस गिनती मे।"

"अच्छा भूल स्वीकार करती है तो बोल हारी।"

"एक बार नहीं लाख बार हारी। आपसे तो हारने मे ही शोभा है, हारने मे ही कर्तव्यपालन है।"

"अच्छा हार गई तो दंड ! दंड भी भोगना होगा।"

"पर दंड आपने क्या सोचा है ?"

"प्रयाग का सा साफा और कोट।"

"नहो सरकार, ऐसा नहीं होगा। मैं एक बार पहन चुकी। अब पारी आपकी है। आपको पहनना पड़ेगा। पहनकर वादा पूरा करना होगा। आज मैं अपने हाथों से पहनाऊँगी। पगड़ो की जगह साड़ी, धोती के वदले लहँगा और कोट की ठौर अँगिया पहनाऊँगी, और रुच रुचकर सजाऊँगी। ऐसी सजाऊँगी जिससे कोई पहचान न सके कि आप पंडित प्रियंवदानाथ हैं।"

"भला तो पक्की ठान ली? सचमुच ही? जरूर ही? तब "प्रियानाथ" क्यों नहीं?"

"हाँ! हाँ! (कुछ झेंपकर) सत्य ही! और सो भी इसलिये कि जीते को हराना चाहिए, हारी को जिताना चाहिए। मैं एक बार हारकर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुकी। पितामह भीष्म ने अपना सर्वस्व अर्पण करके ही भगवान् को हराया था। श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा तुड़वा दी थी। बस मैं भी हराऊँगी।" इस तरह कहकर भगवान् पुष्पधन्वा के बाणों का प्रयोग करती हुई खूँटी पर से कपडे उतारकर ज्योंही हँसते हँसते, मुसकुराते मुसकुराते वह पहनाने लगी त्योंही किवाड अकस्मात् खटके। बाहर से कुछ सुरबुराहट की हलकी सी आवाज आई और तब "हाय यह फिर क्या गजब हो गया!" कहकर वह उसी दम मूर्च्छित हो गई। "हैं! हैं! बावली यह क्यों? क्या अब भी तेरे दिमाग में से भूत का भय नहीं निकला।" कहते हुए प्राणनाथ ने शीतोदक सिंचन से प्यारी के नेत्र युगलों का अभिषेक किया और साथ ही थोड़ा सा ठंढा ठंढा शरबत पिलाया। कोई पाँच मिनट में जब उसके होश ठिकाने आ गए तब प्रियंवदा कहने लगी—

"आपके पुण्य प्रताप से भूत बेशक अब नहीं रहा किंतु मेरे अंतःकरण से अभी तक भय नहीं निकला। योंही मुझे रस्सी का साँप दिखलाई दिया करता है।"

"भय न निकलने मे तेरा क़ुसूर नही। प्रयाग और गया की वटना ने मुझे भी मनवा दिया कि यह भी कोई योनि है। जिन वातों को तर्क साबित नहीं कर सकता वे अनुभव से प्रमाणित होती हैं। परंतु जैसे अनुभव ने यह साबित कर दिया कि (रोकर) माता को प्रेतयोनि मिली थी वैसे ही यह भी तो प्रमाणित कर दिया कि उसकी मोक्ष हो गई। फिर डरती क्यों है?"

"सरकार डरना स्त्रियों का स्वभाव है। उनकी रक्षा करने का साधन है। एक वार जब भय अंत:करण मे प्रवेश कर जाता है फिर उसका निकलना मुश्किल है। केवल भय ही नहीं, नारी-हृदय मे बुरे वा भले जैसे संस्कार अंकित हो जाते हैं उनका निकलना कठिन है। रमणी-हृदय वज्र से भी कठोर और कमल से भी कोमल है। परंतु क्यों जी, उनको ऐसी योनि क्यो मिली जिन्होने आजीवन कोई पाप नही किया? जिन्होंने पचास वर्ष अपने सतीत्व की रक्षा करके विधवापन मे निकाल दिए और जो सदा ही भगवान् के भजन मे अपना मन लगाए रहती थी उन्हे ऐसा दंड? कुछ समझ मे नही आता।"

"अवश्य ऐसा ही है। वह मेरी जन्मदात्री न सही परंतु माता से भी वढ़कर थी। उन्होने हमारा लालन पालन किया है। यह शरीर उन्हीं के अनुग्रह से है। वह हमे पेट के बेटों से भी बढ़कर समझती थीं। उन्होंने जब से जन्म लिया तब से कभी सुख नहीं पाया था। हमारे दु:ख को अपना दु:ख और

हमारे सुख मे अपना सुख मानने से ही उन्हे आसक्ति हुई। बस यह आसक्ति ही सब झगडो की जड़ है। केवल आसक्ति से ही जब कीडा भॅवर हो जाता है तब वही उसे इस योनि में घसीट ले गई। घसीट ले जाने पर भी उसके सद्गुणो के प्रभाव ने, उसके सुकर्मों ने उसे प्रेतयोनि पाने पर भी कुकर्मों में प्रवृत्त नहीं होने दिया, इसलिये ही उसने तुझको सताने के व्याज से सुझाया और अल्प पाप का, अल्प आसक्ति का अल्प ही दंड मिलकर उसका छुटकारा हो गया।"

"हॉ ठीक है। यथार्थ है। वास्तव मे उन्होंने मरने पर भी हमारी भलाई की। यह (बालक को दिखाकर) उन्ही के आशीर्वाद का फल है। उन्होंने स्वयं दुःख उठाकर हमे सुख पहुॅचाया। हमे अपने कर्तव्य की, गया-श्राद्धादि करने की, यात्रा का सुख लूटने की याद दिलाई। धन्य है ! लाख बार धन्य है !! मैं अब बहुत पछताती हूँ। उन्हे बुरा भला कहने पर अपने आपको धिक्कारती हूँ। अब, जब मैं सोचती हूँ तब निश्चय होता है कि उनके जीते जी मैं जो उनसे अपना दुःख मानती थी सो भी भूल से। उसमे दोष मेरा ही था। उनकी सीधी शिक्षा भी मुझे टेढ़ी लगती थी। भगवान् इस पाप से मेरी रक्षा करे।"

जिस समय इनका इस तरह संभाषण हो रहा था फिर वही पहले की सी आवाज आई। "कोई है ? बाहर कोई अवश्य है। शायद कोई तुझे बाहर बुला रहा है।"

"रात के बारह बजे मुझे कौन निगोड़ा बुलाने आया ?"

"शायद घुरहू हो या आबू का साधु !"

"नहीं जी ! हर बार की दिल्लगी अच्छी नहीं। बाहर से कोई सुनता हो तो न मालूम क्या समझे ? आग लगे उन दोनों के ! एक तो गया जहन्नुम में और दूसरे का भी मेरे सामने नाम न लो।"

"खैर तो और कोई होगा, शायद बहू आई हो। आज छोटा भैया भी तो यहाँ नहीं है। जीजी को अपना दुःख दर्द सुनाने आई हो ! जल्दी किवाड़ा खोलकर देख तो कौन है ?"

"नहीं मैं न खोलूँगी। मुझे डर लगता है। फिर आपके लिये कोई नई दिल्लगी खड़ी हो जाय।"

इतनी बातचीत हो चुकने पर पंडित जी खड़े हो गए। प्रियंवदा ने किवाड़ खोले। किवाड़ खुलते ही लालटैन लिए हुए सुखदा संकोच से पीछे को हटी और तब "बहन क्या बात है ?" कहकर प्रियंवदा ने उसे रोका। पंडित जी हटकर अलग चले गए और देवरानी जेठानी में इस तरह बातें हुई—

"मैंने यहाँ आकर तुमको जगा दिया। मैं माफी माँगती हूँ परंतु करूँ क्या ? (लड़के की ओर इशारा करके) आज न आप सोता है और न मुझे नींद लेने देता है। बस "अम्मा ! अम्मा !!" की रट लगाकर इसने मेरा बुरा हाल कर रखा है। मैंने तो पहले ही तुमसे कह दिया था कि यह मेरे पास न रहेगा। बस सँभालो अपनी धरोहर ताकि मैं सुख से सोऊँ !"

"हाँ वीर! मेरी धरोहर। बस मुझे भी यही चाहिए। दिए जा ऐसी ऐसी धरोहरें और मेरे भरोसे सुख से सो। जितने होंगे सबको मैं अवेर लूँगी।"

"बस बस! (मुसकुराकर) दिल्लगी न करो। भगवान् ने जो दिए हैं वे ही सुख से रहें।" कहती हुई बालक को जेठानी की गोदी में देकर सुखदा अपने कमरे में जा सोई और इधर छोटा नन्हा बड़े भाई के पास जाकर सो गया। दोनों को सुलाकर बस वे दोनों भी सो गए।

प्रकरण—६६

बालशिक्षा और परोपकार व्रत

भोला कहार पहले ही कामचोर था। अब उसे अच्छा बहाना मिल गया। अपने अपने मालिकों की धोतियाँ धोने का काम तो दोनों बहू रानियाँ करती हैं, बरतन चौका करने और झाड़ू बुहारे के काम पर, पानी भरने पर दो नौकरनियाँ अलग हैं किंतु कामचोर भोला से दोनों मालकिनों की धोतियाँ धो देना भी नहीं बनता है। घंटों तक धोतियाँ पड़ी पड़ी पानी मे मट्टी से और धूल से खराब हो जायँ तो कुछ पर्वाह नहीं। "निपूता धोता अच्छी तरह है। खूब कछारकर धोता है इसलिये उसके भरोसे छोड़ देती हैं। नहीं तो हम ही धो डाले तो क्या हमारे हाथ घिस जायँ।" कहकर प्रियंवदा कई बार उसे फटकारती है, गुस्से मे आकर सुखदा दोनो धोतियों को जेठानी के मना करने पर भी धो डालती है और उसकी ऐसी हरकत देखकर कांतानाथ कभी कभी उसके एकाध चपत भी जमा दिया करते हैं परंतु उसके लिये ऐसी फटकार, ऐसे ताने और ऐसी चपतें "हाथी पर अर्क फल की मार" की तरह कुछ असर थोड़े ही करती हैं? बहाने बनाने को तो भोला मानों टकसाल ही ठहरा! यदि उसे कहीं भेजने की आवश्यकता पडी तो बहाना और जो कहीं घर का ही

कुछ काम वतला दिया तो वहाना। और वहाना भी ऐसा वैसा नही। "वच्चो को खिला रहा हूँ। और ये रोने लगें तब ?" वस इसलिये उसके कुसूर मुआफ हैं। वालक भी उससे ऐसे हिले हुए हैं कि वात न पूछो। कोई उसे लातें मारता है, कोई उसे काटता है और कोई उसे गेंद मारकर भाग जाता है। इन दोनों वालकों के पास अड़ोस पड़ोस के कई बच्चे खेलने को आ जाया करते हैं। ये सब वालक आपस मे कभी लड़ते हैं, कभी मार देते हैं, कभी गालियाँ देते हैं किंतु भोला चुप। उसे हँसने के सिवाय कुछ काम नहीं। इधर बच्चे खेला करते हैं और उधर भोला पडा पड़ा नींद मे खुर्राटे भरा करता है। कोई बालक उसकी टाँग खैंचता है तो चुप और कोई उसके कपड़े खैंच भागता है तो "ऊँ ऊँ। यह क्या करते हो ? मैं आज मालिक से तुम्हारी चुगली खाकर न पिटवाऊँ तो मेरा नाम भोला नहीं।" कहने के सिवाय चुप ! वालको का जी इस पर और इसका बालकों पर देखकर दोनो मालकिने इसे खाना भी अच्छा देती हैं। कभी कभी यह नाराज होकर जब रूठ जाता है तब बालक रो रोकर घर भर दिया करते हैं इसलिये इससे कोई विशेष कुछ कहता सुनता भी नही। वस इस तरह इसकी खूब पटती है।

बड़े मालिक इससे अवश्य नाराज हैं। ऐसे तो नाराज नहीं जो कभी क्रोध मे आकर इसे निकाल बाहर करें क्योंकि "बुरा या भला जैसा है पुराना नौकर है। कामचोर अवश्य

सही परंतु लँगोट का सच्चा है, बेईमान नहीं। यदि अन-गिनित रुपए दे दो तो भी क्या मजाल जो एक पाई का फर्क पड़े।" यही उनका भोला के लिये सर्टिफिकेट है, और हजार उनके नाराज रहने पर भी इसी की बदौलत वह मौज करता है। फिर यदि पंडित जी नाराज होकर इसे निकालने को भी तय्यार हो जायँ तो इसकी सिफारिश करनेवाले बहुत हैं। दोनों बालक तक तय्यार हैं। बस इसलिये उसे निश्चय है कि "मैं निकाला हरगिज भी न जाऊँगा।" और जब उसके "जोरू न जाता अल्ला मियाँ से नाता" है तब उसे पर्वाह भी क्या।

खैर! इसे यदि पर्वाह नहीं है तो न सही परंतु पंडित जी को भय है कि कहीं इसकी कुसंगत से बालक बिगड़ न जायँ। इस समय उनकी कच्ची उमर है। जैसा बाहर का सस्कार होगा वैसी ही उनका चरित्र गठेगा। कुम्हार मिट्टी के लोंदे को चाक पर रखकर जैसा बरतन बनाना चाहे वैसाही बन जाता है। ये बच्चे मिट्टी के लोंदा, भोला कुम्हार और चाक इनका खेल। इस बात से इन्हे पूरा खटका है क्योंकि इन्हे निश्चय है कि गौड़बोले की शिक्षा का, माता पिता की रक्षा का नन्हों पर उतना असर नहीं होगा जितना भोला के कुसंस्कारों का। सुखदा इन बातों की बारीकी सम-झनेवाली नहीं, कांतानाथ लज्जा के मारे चुप रह जाते हैं, प्रियंवदा सब बाते जानने पर भी "बालकों का मन मैला न होने पावे।" इसलिये दर गुजर करती है। इसलिये पंडितजी

से कोई कहनेवाला है तो केवल गौड़बोले। उन्होंने कई बार पंडित जी से कहा है और खैंचकर यहाँ तक कह डाला है—

"यदि आप बालकों को इस तरह बिगाड़ेंगे तो मैं चला जाऊँगा।' आपका नुकसान मुझसे देखा नहीं जाता। यदि आपके हजार रुपए की हानि हो जाय तो कुछ चिंता नहीं किंतु यह नुकसान जन्म भर का है, पीढ़ियों तक है, अटल है, अमिट है। दोनो बालक कुशाग्रबुद्धि हैं। इन्हे विशेष समझाना नहीं पड़ता। विशेष रटाना नहीं पड़ता। छोटा लड़का कुछ ढीठ अवश्य है, जिद्दी है परंतु समय पाकर ये ऐब निकल सकते हैं। केवल आपके निरीक्षण की आवश्यकता है। इनकी शिक्षा दीक्षा का काम आपको अपने हाथ मे लेना चाहिए। हाँ! मैं जानता हूँ कि आपको अवकाश नहीं है परतु इनके लिये आपको अवश्य फुरसत निकालनी पड़ेगी।"

पडित प्रियानाथ ने गौडबोले की सम्मति पर ध्यान दिया। जैसे वह धार्मिक, सामाजिक, व्यावहारिक और ऐसे अनेक व्रतों के व्रती थे वैसे ही उन्होंने यह व्रत भी दृढ संकल्प के साथ ग्रहण किया। बस पहला काम यही किया कि भोला की जागीर छिन गई। उसे खाने पहनने का टोटा नहीं। काम काज के लिये भी उससे विशेष कोई कहता सुनता नहीं परंतु वह मानता है कि "मेरे दिन भर गए।" इसी चिंता से वह अब बहुत कुछ लट गया है. सूखकर काँटा हुआ जाता

है। यदि कुछ समझाया जाता है तो रो देता है और जब कभी जी मे आता है तो भाग जाता है। उसे यदि कोई मनाने जाता है तो नहीं आता है किंतु जब भूख के मारे आँखें बैठने लगती हैं तब झख मारकर आ जाता है। पंडित जी यदि उसे समझाकर गौड़बोले की सेवा के लिये नियत करते है तो—"जिसने मेरी परसी थाली छीन ली उसकी कभी चाकरी न करूँगा। काटकर टुकड़े कर डालो तो इस डोकरे की धोती न धोऊँगा।" कहकर चुप हो जाता है और जो कहीं कांतानाथ उसे अजमेर ले जाना चाहें तो "मैं इस घर से मरा निकलूँगा जीते जी (पंडित जी के चरणों को छूकर) इन्हें कभी न छोड़ूँगा। हाँ! इनके साथ लंका जाने को भी तय्यार हूँ।" यों कहकर रो देता है। खैर! जब उसका स्वभाव ही ऐसा है, जब उसके लिये खाने पहनने की कमी नहीं है तब उसे यों ही रहने दीजिए। उसे न अब इस किस्से से मतलब है और न प्यारे पाठकों को उसका विशेष हाल जानने की आवश्यकता है।

हाँ! इस जगह इतना लिख देना चाहिए कि अब दोनों बालकों की शिक्षा दीक्षा का अच्छा प्रबंध हो गया है। जो महाशय चित्त लगाकर इस किस्से को "अथ" से लेकर "इति" तक पढ़ेंगे उन्हें यह जतलाने की आवश्यकता नहीं कि कमलानाथ और इंदिरानाथ को शिक्षा किस तरह की दी गई। "हिंदू गृहस्थ" मे शिक्षा का ढाँचा उनके लिये पहले

से मौजूद था ही, उसमें पंडित पंडितायिन और गौड़बोले का अनुभव और सयुक्त कर लिया गया। आगे वे क्योंकर घर की शिक्षा से निवृत्त होकर हिंदू विश्वविद्यालय के "ग्रेज्युएट" हुए, उनका कब उपवीत कब विवाह और कब उनके कार्य का आरंभ हुआ और वे कैसे निकले सो कहना इस किस्से का विषय नहीं। हाँ! यहाँ इतना अवश्य लिख देना चाहिए कि "सुख संपति परिवार बडाई, धर्म्मशील पहँ जाहि सुहाई।" इस लोकोक्ति के अनुसार सब ठीक हो गया।

किंतु गौड़बोले के काम की यही इतिकर्तव्यता नहीं थी। उन्होंने पंडित जी के परामर्श से, उन्हीं के द्रव्य से और उन्हीं के निरीक्षण में एक औषधालय और एक पाठशाला खोल रखी है। जब ये दोनो बालक और साथियों के साथ यहीं पढ़ते हैं तब शिक्षा का क्रम तो वही होना चाहिए जो ऊपर कहा गया है। हाँ औषधालय का क्रम ऐसा है जिसमे लड़के पढ़कर, सीखकर वैद्य बनते हैं, जहाँ इलाज आयुर्वेद से और चीर फाड़ डाक्टरी के मत से होती है और जहाँ इलाज करने के लिये "सुश्रुत" मे लिखे औजार बनवा लिए गए हैं और जहाँ नवीन, ताजी वनस्पतियाँ मिलने के लिये एक बाग भी लगा दिया गया है। केवल इतना ही क्यो किसी समय पूना के सुप्रसिद्ध स्वर्गवासी विद्वान् डाक्टर गर्दे महाशय ने वात, पित्त, कफ तीनो दोषों की जाँच करने के लिये थर्मामेटर का जो नमूना तय्यार किया था उसी से लाभ उठा-

कर इन्होंने नाड़ी-विज्ञान पर भी बहुत जोर दे रखा है। गौड़बोले का मत है—

"यदि समय के फेर से, राजाश्रय न मिलकर, वैद्यों की मूर्खता और सर्वसाधारण की उपेक्षा से हमारा आयुर्वेद मृत-प्राय भी हो जाय तो हो जाय किंतु जब तक हमारे ग्रंथ विद्यमान रहेंगे वह नष्ट नहीं हो सकता। किंतु भय दो बातों का है। एक नाड़ी-विज्ञान ग्रंथगम्य नहीं। पढ़ने से नहीं आ सकता। यह अनुभवगम्य है और लगभग नष्ट हो चुका है और दूसरे ओषधि का लाना, जंगल से खोदकर लाना जब गँवार भीलों के हाथ मे है, अपढ़ पंसारी ही उन्हे बेचनेवाले हैं तब मुझे भय है कि कहीं उनकी पहचान ही न मारी जाय।"

बस इसी विचार से उन्होंने उक्त प्रबंध आरंभ कर दिया है। इस उपन्यास-लेखक के मनोराज्य मे गौड़बोलेजी को अपने कामों मे सफलता हुई और उनकी नकल भी होने लगी है। प्रिय पाठक पाठिकाओं को अधिकार है कि वे इन बातों का अनुकरण करे अथवा यों ही चुप्पी साध जायँ।

पंडित प्रियानाथ के स्नेहियों मे गौड़बोले और दीनबंधु दो ही मुख्य हैं। गौड़बोले मित्र हैं और उनके आश्रित हैं, दीनबंधु उनके उपकारक और निरपेक्ष हैं। अब इतना अवश्य हो गया है कि कभी पंडित जी उनसे मिलने जाते हैं और कभी वही यहाँ आकर इनसे मिल लिया करते हैं। साल भर मे जब तक दो चार बार भेंट न हो तब तक दोनों को कल नहीं।

दोनो का दोनो के यहाँ आतिथ्य भी खूब होता है किंतु "पंडित दीनबंधु के सामने लेने का कभी हरगिज भी नाम न लो।" जब उनसे इस विषय मे कुछ कहा जाता है तो कानो पर हाथ लगाकर सिर झुका लेने के सिवाय, कृतज्ञता के भार से दब जाने के अतिरिक्त चुप। यदि पंडितजी चुपचाप उनके वस्त्रो मे कुछ बॉध देने का प्रयत्न करते हैं अथवा बॉध ही देते हैं तो "बस क्षमा कीजिए।" कहकर वापिस कर देते हैं। उनका नियम है कि लोक-हित-कार्य्य मे कभी किसी से सहायता न लेनी। जिसका उपकार बन पड़े उससे यदि किसी काम के लिये कुछ लिया जाय तो दला हो जाय। वह कहा करते हैं कि "दुनिया मे ऐसे हजारो काम हैं जिनमे दूसरे की सहायता की अपेक्षा नहीं।" बस इसी उद्देश्य से वह चुपचाप दीन दुखियों की सहायता किया करते हैं। किस तरह किया करते हैं सो यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। बस नि.स्पृहता की, परोपकार की और कर्तव्यपरायणता की पंडित दीनबंधु पराकाष्ठा हैं। पंडित प्रियानाथ आजीवन उनके कनौड़े हैं और प्रियंवदा जब जब उनके दर्शन पाती है तब तब उसके हृदय मे पितृभाव का संचार होकर वह गद्‌गद हो जाया करती है। वह चाहे संकोच से कुछ न कहे परंतु उसके नेत्र-कमलों से कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिये आँसुओं की झड़ी लग जाती है, और "बेटी रो मत। मैंने कुछ भी नहीं किया। मुझ जैसे तुच्छ कीटानुकीट से बन ही क्या सकता

है। जो कुछ किया परमेश्वर ने किया है। वही नारियों के शील की रत्ता करनेवाला है।" कहते हुए उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे शांत कर देते हैं।

पंडित दीनबंधु जब यहाँ आते हैं तब बच्चो के लिये कुछ अवश्य लाते हैं। वह "ना ना !" कहने पर भी उन्हे देते हैं और जो कुछ देते हैं वह उनकी परीत्ता लेकर। परीत्ता भी उनकी कड़ी है, पुस्तक-संबंधिनी नहीं, व्यावहारिक। और वह मिठाई नही देते, पैसा नही देते और कपड़े नहीं देते। अपनी यात्रा मे जहाँ से उन्हे कोई ऐसी चीज मिल जाय जो "कम खर्च वाला नशीन" हो और जिससे बालकों का ज्ञान बढे वही उनका इनाम है। बस इस तरह उनकी आनंद से गुजरती है। हिंदी के कितने सुलेखक महाशय "डिटेक्टिव" कहानियाँ लिखने और अनुवाद करने के साथ यदि पंडित दीनबंधु जैसे सच्चे परोपकारी का किसी उपन्यास मे चरित्र अंकित करे तो अधिक उपयोगी हो सकता है। लेखक की यही प्रार्थना है।

प्रकरण—६७

होली का त्योहार

पंडित प्रियानाथ जी विद्वान् थे, भगवान् के अनन्य भक्त थे, सच्चे सनातनधर्मावलंबी थे, व्यवहारकुशल थे और कुशाग्रबुद्धि भी। उनकी मानसिक शक्ति असाधारण थी और यो वह हिंदूपन का एक उत्तम नमूना थे किंतु क्या इन गुणों के साथ वह रोनी सूरत थे? यद्यपि प्रियंवदा के साथ समय समय पर थोड़ा बहुत हँसी मजाक प्रकाशित होता रहा है किंतु छासठ प्रकरण रंग डालने पर भी अब तक जब उनके विनोदीपन की बानगी नहीं दिखलाई गई तब यदि पाठक उन्हे "रोनी सूरत" समझ ले तो उनका दोष क्या?

अस्तु! यदि पंडित जी इन गुणों के साथ विनोदप्रिय न हों, स्वयं हँसना और दूसरे को हँसा देना न जानते हो और सदा ही गंभीर बने बैठे रहे तो वह "आदर्श हिंदू" काहे के? मुसलमान ताजियादारी करते हैं, ईसाइयो मे भोजन के समय चार आँसू गिराना भगवान् की कृतज्ञता है किंतु हिंदुओ के यहाँ कोई त्योहार ऐसा नहीं, श्राद्ध-पक्ष तक ऐसा नहीं, जिसमे रोने की आवश्यकता हो। हिंदुओं के प्रत्येक धर्म मे, संस्कार मे और काम काज मे आनंद है। हँसी ठट्ठा आदमी के दिमाग को शोक संताप से रहित करके आनंद मे मग्न

श्रौर ताजा कर देने की मुख्य सामग्री है ! जो हँसना या हँसाना नहीं जानता अथवा दिन रात की साठ घड़ियों मे जो एक दो बार भी नही हँस लिया करता है वह सचमुच ही या तो योगी है अथवा पशु है। योगी भी राजा जनक की श्रेणी का नही, "गृहेषु पंचेद्रियनिग्रहं तपः" का अनुयायी नहीं, दुनियादारी मे रहकर राग द्वेष छोड देनेवाला, फल की आकांक्षा छोड़कर अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल कार्य साधन करते हुए उन कामो मे निर्लिप्त रहनेवाला योगी नही— वह हिमालय-गिरि-गुफा मे समाधि चढ़ाकर कंद मूल फल से अपना गुजारा कर लेनेवाला, आदमी की सूरत से घृणा करनेवाला योगी है। बस पंडित जी प्रथम ेणी के योगी थे। वह बूढो मे वृद्ध, जवानों में युवा श्रौर बालकों मे बच्चे बनकर रहते थे। जिस समय उन्हे व्याख्यान देने का, साधारण बातचीत करने का अथवा यो ही खाली बैठे रहने का अवसर मिलता अथवा किसी को मन मारे देखते तो वह एक ही बात ऐसी कह डालते जिससे सबके सब खिल-खिलाकर हँस पड़ें। किंतु उनकी एक बात भी फूहड़ नहीं, अश्लील नहीं, भद्दी नही श्रौर मतलब से खाली नहीं, वे बहाने से वीरबल के से उपदेश देनेवालों मे हैं।

एक बार किसी सुधारक अफसर ने नई टकसाल मे ढलकर धोबी से ब्राह्मण बने हुए व्यक्ति को अपने दफ्तर मे क्लर्की की जगह दे दी। दूसरे दिन पंडित जी घर के कपड़ों

की मोट बाँधकर नदी पर धोने के लिये पहुँचे। वहाँ जाकर वहीं भट्ठी मे मैले कपड़ों को गर्म पानी मे उबालना, खार या साबुन लगाकर सुखाना और तब "संचो राम ! संचो राम !!" की आवाज के साथ उन्होंने कपड़े धोना आरंभ किया। वह जानते थे कि अफसर महाशय थोड़ी देर में इधर होकर निकलनेवाले हैं। सचमुच साहब उस तरफ आए और पंडित जी की ऐसी रचना देखकर कहने लगे—

"हैं हैं !! आज यह क्या ? आज धोबी का काम क्यों ?"

"हाँ साहब ! सीखता हूँ। अब नए जमाने मे नई टकसाल से जब धोबी से ब्राह्मण बनने लगे हैं तब उनका काम कौन करेगा ?"

"बेशक !" कहकर अफसर महाशय कुछ मुसकुराए, कुछ शर्माए और छड़ी उठाकर वहाँ से चल दिए। तीसरे ही दिन उन्होंने नए क्लर्क को हुक्म दे दिया—

"तुम पंद्रह रुपए महीने की क्लर्की के बदले अँगरेजी ढंग से कपड़े धोने की दूकान खोलो। उसमे तुम्हे पचास मिल जाया करेंगे।"

बस इस प्रकार का जवाब पाकर धोबीराज वहाँ से चले गए। उस दिन पीछे उसका क्या हुआ सो लिखने की आवश्यकता नहीं, और न कुछ मतलब है।

खैर। पंडित जी जब ऐसे विनोदी थे तब उनके यहाँ होली का त्योहार न मनाया जाय तो बात ही क्या ? आज

होली है। पंडित जी का कमरा वसंती रंग के सामान से सजाया गया है। आज परदे वसंती हैं, लंप वसंती हैं, फर्श वसंती है और उनके कपड़ों के सिवाय सब कुछ वसंती है। चार पाँच बड़े बड़े थालों मे तरह तरह की गुलाल भरी हुई है, अबीर रखा हुआ है, कुंकुमे धरे हैं, अनेक डालियाँ भाँति भाँति के पुष्पों से डट रही हैं, पान की, इलायची की, लवंग की, और छालियों की भरमार है। कभी डफ पर होली गाई जाती है, कभी तबला ठनकने लगता है और कभी सितार की ताना रीरी। हार्मोनियम अलग। ग्रामोफोन अलग। आज जाति पाँति का भेद भाव नहीं। छोटे बड़े का विचार नहीं। सब होली गाते हैं और पिचकारियाँ भरकर आने-वालो के कपड़े रँगते जाते हैं। जो आता है उसके गालों पर गुलाल मलकर खूब गत बनाते हैं। कभी बालकों से होली खेलते हैं और कभी बूढ़ो से। आज बालक और बूढे समान हैं। यदि कोई "हैं हैं!" या "नाहीं नूही" करता है तो उसकी खूब खबर ली जाती है। ऐसे ही एक महा-शय कर्म संयोग से वहाँ आ निकले हैं। उनकी होली पर घृणा देखकर नवागत महाशय को सब लोगों ने घेर लिया है, कोई उन पर गुलाल डालने को तैयार है और कोई पिचकारी मारने को। उन्होने इन होलियारों मे से निकल भागने का भी बहुत प्रयत्न किया है किंतु लाचार। तब उन्होंने कड़क-कर, आँखें निकालकर, छड़ी उठाते हुए कहा—

"खबरदार, पिचकारी का एक भी छींटा लगा तो अभी खोपड़ी फोड़ दूँगा। क्या वाहियात त्योहार है। बेहूदगी की हद हो गई। इस बेहयाई का भी कुछ ठिकाना है ?"

"नहीं साहब ! बेहूदगी नहीं। बेहयाई नहीं। ऋतुराज वसंत की लीला है। बेहयाई और बेहूदगी का बुखार निकाल देने का दिन है। भगवान् पंचशायक का केवल एक ही दिन मे उभरा हुआ जोश निकालकर साल भर तक सभ्यता से रहने के लिये शुभ मुहूर्त है, देशी गँवारो की होली और विदेशी विद्वानो का 'एप्रिल फूल" है, काम-विकारों का उफान रोकने के लिये पानी के छींटे हैं।"

"कुछ भी हो। है बेशक वाहियात। ब्राह्मण और भंगी चमार सब एकाकार ! कीचड और पनाले का त्योहार ! गाली गलौज का सत्कार और दुराचार मे प्रवृत्त करने का साधन।"

"नहीं साहब ! वाहियात नहीं ! यह हिंदुओ का चार मे से एक जातीय त्योहार है। जो लोग छुआछूत से, जाति-भेद से अथवा पंक्ति-भेद से देश का विनाश मानते हैं उनके लिये मुँहतोड़ जवाब है। यह त्योहार डंके की चोट दिखला रहा है कि हिंदुओं मे सैकड़ों जातियाँ होने पर भी, आपस मे खान पान का व्यवहार न होने पर भी और छुआछूत की असाधारण छीछालेदर होने पर भी सब एक है। धार्मिक कामो मे एक हैं, सामाजिक कामो मे एक हैं और इतने

एक हैं जितने इन बातों को वाहियात समझनेवाले एक नहीं। आपके एके मे लखपती कंगाल को, अफसर मातहत को और बड़ा छोटे को पास बिठलाने से भी घृणा करते हैं किंतु यहाँ आज राजा रंक एक हैं।"

"अच्छा, परंतु है तो कीचड़ पनाले का ही त्योहार?"

"जिनके लिये है उनके लिये हो भी सकता है किंतु कीचड़ पनाले का शूद्रों के लिये, अंत्यजों के लिये अथवा शराबियों के लिये होगा। द्विजों के लिये, उत्तम शूद्रों के लिये अबीर है, गुलाल है, कुंकुमे हैं और रंग है। होली सबके लिये समान है, उमंग एक सी है किंतु अधिकारी-भेद से सामान जुदे जुदे हैं। आप जब दरबार मे जाते हैं तब कुर्सी पाते हैं और गेदा धोबी चौखट तक भी नहीं पहुँचने पाता।"

"और वही विद्वान् हो तो हमारे बराबर कुर्सी पावेगा।"

"हाँ होली के लिये तो ऐसा हो सकता है कि गेदा शराब पीना छोड़ दे और कीचड़ के बदले अबीर काम मे लाने लगे किंतु दरबारी कुर्सी उसे नहीं मिलनी चाहिए। आप आप ही हैं और धोबी धोबी ही है। ऐसा न हो तो आपको उसे अपनी कुर्सी देकर धोबी बनना पड़ेगा।"

"अच्छा माना मैंने कि आपकी यह दलील ठीक है परंतु वाही तबाही बकना, शिष्ट पुरुषों के सामने, स्त्री-समाज के आगे गालियाँ बकना, कबीर गाना किस काम का? यह बेहूदगी तो वाहियात फैलानेवाली है।"

"नहीं ! व्यभिचार को रोकनेवाली है। काम-विकारा के उफान को निकाल देने के लिये हलका सा जुलाब है, साल भर के तीन सौ पैंसठ दिन तक जो चित्त-वृत्तियाँ धर्म के बंधन से, समाज के भय से रुकी रहती हैं उन्हे एक दिन मे निकालकर निर्विकार होने का साधन है। स्त्री-पुरुषो का, परस्त्री का परपुरुष के साथ कमर मिलाकर नाचने से यह हजार दर्जे अच्छा है। दोनों के उद्देश्य एक ही हैं। प्रकार मे भेद है और परिणाम मे भी भेद है। मनुष्य की चित्त-वृत्ति स्वभाव से इस ओर जा रही है। लगाम ढीली छोड देने से घोड़ा अवश्य सरपट दौड़ते दौडते सवार को गिरा देगा। बस लगाम कसकर उसे खूब दौडा लीजिए ताकि आप गिरे नहीं। किंतु जब आप उसे स्थान मे ला बाँधें तब दुलत्तियाँ झाड़ने के लिये उसे आजाद कर दीजिए।"

"अच्छा यह भी मान लिया परंतु आप जैसे विद्वानो के यहाँ रंडी का नाच। बस ! पंडित होकर आज तो आपने कमाल ही कर डाला। अब दुनिया मे इससे बढ़कर बुराई ही कौन सी है जिसे आप छोड़ेंगे। रंडी सब बुराइयो की जड़ है। जुआ, शराब, पाप सब इसके गुलाम हैं।"

"जैसा साज है वैसा सामान है।" "जस काछिय तस नाचिय नाचा।"

"तब, आपने मजूर कर लिया कि रडीबाजी करने मे कोई दोष नहीं है। ऐसी दशा मे आप अपने यहाँ इस बात का भी एक स्कूल खोल दीजिए।"

"नहीं! आप मेरा मतलब समझे नहीं। बेशक रंडियाँ समाज मे एक बला हैं। तब ही शिष्ट पुरुषों ने इनकी निंदा की है। वेश्यागमन करनेवाले को राजदंड मिलता है, वह समाजच्युत किया जाता है और सबसे बढ़कर यह कि वह लोगों की आँखो से गिर जाता है। परतु इससे आप यह न समझ लीजिए कि ये समाज से निकाल देने के लायक हैं, फिजूल हैं और इन्हें बंद कर देना चाहिए। नहीं! इनकी भी समाज के लिये दो कारणो से आवश्यकता है। एक यह कि जब गाने बजाने और नाचने का पेशा करनेवाली हमारी सोसाइटी मे न रहेगी तब कुल-वधुएँ इस काम को ग्रहण करेंगी। मैसूर और मदरास प्रांत मे जहाँ रंडो का नाच बंद कर दिया गया है वहाँ भले घर की बहू बेटियो को नाचना गाना सिखाने के लिये स्कूल खोलने का अवसर आया है। नृत्य और गायन पर मनुष्य की स्वभाव से प्रवृत्ति है। उसको पूरा करने के लिये दोनों मार्ग खुले हुए हैं। आप यदि रंडो का नाच बंद करेंगे तो एक दिन आपको बहू बेटियाँ अवश्य नचानी पड़ेगी।"

"परंतु महाराज! रंडियाँ तो देश मे व्यभिचार फैला रही हैं, लडकों को बिगाड़ रही हैं।"

"बेशक बिगाड़ रही हैं और जहाँ तक बन सके समाज से भय दिलाकर ऐसा कुकर्म बंद करना चाहिए परंतु समष्टि रूप से समाज पर दृष्टि डालिए तो इस काम के लिये भी

इनकी आवश्यकता है। जिस समाज मे वेश्याएँ न हों उसके सौ गृहस्थ लेकर उनमे व्यभिचार कितना होता है, इसकी गणना कीजिए और तब हिंदू समाज के सौ गृहस्थों से तुलना कीजिए तब आपको मालूम हो जायगा कि वेश्याएँ किस सिद्धांत पर सिरजी गई हैं। इस तरह वे अवश्य अपना आपा विगाड़ रही हैं, अपना सर्वस्व नष्ट कर रही हैं किंतु हिंदू-नारियों के सतीत्व की रक्षा करती हैं। जैसे बड़े नगरों मे सड़क के निकट जगह जगह पनाले बने हुए हैं, यदि वे न बनाए जायँ तो चित्तवृत्ति को, शरीर के विकार को न रोक सकने पर लोग बाजार और गलियो को खराब कर डाले उसी तरह यदि वेश्याएँ हमारे समाज से उठा दी जायँ तो घर की बहू बेटियाँ बिगड़ेगी।"

"हाँ। यह ठीक है परंतु आपकी दोनों रायें परस्पर विरुद्ध हैं। इधर आप रंडियाँ रखना भी चाहते हैं और उधर रंडोबाजी बंद भी करवाते हैं। "दोउ एक सग न होइ भुवालू; हँसब ठठाइ फुलाउब गालू।" दोनो बाते कैसे निबहेगी।"

"क्यो नहीं ? बराबर निभ सकती हैं। समाजच्युत होने का भय, सदाचार की शिक्षा और वेश्यागमन की ओर, परस्त्री-गमन की ओर प्रवृत्ति न होने पावे ऐसे बंधन बस तीनो का निर्वाह होना चाहिए। यदि इन बातों पर ध्यान रहे तो कभी कोई नर नारी बुराई की ओर नहो झुक सकते।"

"बेशक ब्रह्मचर्य्य बहुत ही बढ़कर है।"

"हाँ ! परंतु आप लोगों की राय का ब्रह्मचर्य्य नहीं। बीस पचीस वर्ष तक कुँवारा कुंवारी रखकर शिकार खेलने की आजादी नहीं। क्या स्त्री और क्या पुरुष, दोनों को कुसंगति से बचाकर सुसंगति से प्रवृत्त करना तो मुख्य है परंतु शरीर-संगठन देखकर रजोदर्शन के काल से कुछ ही पहले विवाह शरीर ही की स्थिति देखकर विवाह से प्रथम, तृतीय अथवा हद्द पंचम वर्ष में गौना, केवल ऋतुकाल में गमन, पातिव्रत तथा एकपत्नीव्रत, यही हमारा शास्त्र के अनुसार ब्रह्मचर्य्य है। लड़की से ड्योढ़ी लड़के की उमर, पुरुष का तीस पैंतीस वर्ष के बाद विवाह नहीं।"

"आपकी सब बातें यथार्थ हैं। बेशक होना भी ऐसा चाहिए। परंतु जैसे आपने होली को हमारा जातीय त्योहार साबित किया उसी तरह सलोनो, दशहरा और दिवाली की भी तो व्याख्या कीजिए।"

"होली की विशेष व्याख्या "होली के रहस्य" में प्रकाशित हुई है। और त्योहारों की व्याख्या का आज समय नहीं। आज समय है हँसी खुशी मनाने का।" बस इतना कहकर पंडितजी ने ज्योंही नवागत महाशय के गालों पर गुलाल मली किसी की पिचकारी, किसी का कुमकुमा और किसी के मुट्ठी भर गुलाल ने उनको व्याकुल कर दिया। "बस बस ! बहुत हुआ। मुआफ करो !" कहते हुए उन्होंने डफ उठाया और उसे बजाकर जब वह सूरदासजी के पद गाने लगे तो एकदम सन्नाटा छा गया।

गाने बजाने के अनंतर जलसा खतम हुआ। फिर समय पाकर पंडित जी ने उस व्यक्ति को समझा दिया कि अनादि काल से जैसे हिंदुओं की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, यों चार जातियाँ हैं वैसे ही सलोनो, दशहरा, दिवाली और होली चार वर्णों के चारों त्योहार हैं। सलोनो को उपाकर्म ब्राह्मणों का, दशहरे को विजय-यात्रा क्षत्रियों का, दिवाली को लक्ष्मी का पूजन वैश्यों का और होली की धूमधाम शूद्रों का, यों चारों वर्णों के चार त्योहार हैं किंतु हैं चारों चारों ही के। ये ही हमारे जातीय त्योहार हैं। उत्साह ही जाति का जीवन है और ये त्योहार हमारा उत्साह जागृत रखने के मुख्य साधन हैं। पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि इन त्योहारों में जो अनुचित बातें आ गई हैं उनका सुधार होना चाहिए, उन्हें एकदम उठा देना ठीक नहीं।

प्रकरण—६८

कुलटा का पछतावा

"बेशक कुसूर मेरा ही है। मैंने जैसा किया वैसा पाया। मैं अगर अपने व्रत पर दृढ़ रहती, सुखदा को बिगाड़ने की कोशिश न करती तो कोढ़ चूने का ही समय क्यों आता? मैं बड़ी पापिनी हूँ। तब ही कोढ़ से गल गलकर मेरी अँगुलियाँ गिर गई हैं, नाक बैठ गई है, पीप बह रहा है, चिउँटियाँ काटती हैं, मक्खियाँ दम तक नहीं लेने देतीं। हाय! मैं क्या करूँ? इस जीने से तो मर जाना बेहतर है। अगर कहीं से एक पैसा मिल जाय तो अफीम खाकर सो रहूँ! पर पैसा आवे कहाँ से? जब पेट की ज्वाला ही पंडित जी के टुकड़ों से ठंढी होती है और जब शरीर ही उनके कपड़ो से ढँकता है तब जहर खाने को पैसा कहाँ? खैर! दुख पाकर मरूँगी। अपनी करनी का दंड पाकर मरूँगी। पर हाय! उस महात्मा के उपदेश पर कान न देने ही का यह नतीजा है। अगर मैं उस समय भी सँभल जाती, फिर कोई कुकर्म न करती तो अवश्य मेरी ऐसी दुर्दशा न होती। खैर! अब पछताने से क्या? जल्दी मर जाने ही से क्या होगा? पापों का दंड यहाँ भी भोगना है और यमराज के यहाँ जाकर भी। बस जीना

मरना बराबर है। पर हाय! अब भी तो मेरे फूटे मुँह से भगवान् का नाम नहीं निकलता। अब भी, इतने कष्ट पाकर भी बुरी बुरी बातो की ओर चित्त दौड़ता है। अब अगर वे महात्मा जी एक बार फिर दर्शन दे तो कुछ उपदेश मिल सकता है। हाय! मैं बहुत दुःखी हूँ। रामजी मुझे मौत दे। अब सहा नहीं जाता। हाय मरी! कोई बचाओ!" कहती हुई मथुरा ज्यो ही मूर्च्छित होकर जमीन पर गिरने लगी एक व्यक्ति ने उसे सँभाला, गिरते से बचाकर धरती पर बिठलाया, आँखों पर जल छिड़ककर उसे सचेत किया और तब उससे पूछा—

"महात्मा कौन?"

"हाँ! आपने सुन लिया? (देखकर, अच्छी तरह निहार लेने के अनंतर पहचानकर) आप बिना मेरे प्राण बचानेवाला कौन? सचमुच आपने बड़ा उपकार किया है। मेरे अपकार के बदले उपकार? आप बड़े महात्मा हैं। मैंने आप जैसे सज्जन को सताया है। महाराज मुआफ करो।"

"हैं! मुझे सताया है? कब? मुझे याद भी नहीं?"

"बेशक आपको याद न होगी। सज्जन दूसरो का उपकार करके याद नहीं रखा करते हैं परंतु मेरे लिये तो कल की सी बात है। मेरे हिए मे होली सी जल रही है।"

"कहना चाहती है तो कह क्यों नहीं देती? और न कहना चाहे मत कह। मुझे सुनने की परवाह नहीं, आवश्यकता

नहीं। मुझे केवल इतना ही पूछना था कि महात्मा कौन थे? जरा पता लगाकर तो देखूँ कि कौन थे? शायद वही हों?"

"हाँ वही थे वही, जिनके लिये आपको संदेह है।"

"मेरा संदेह तुझे क्योंकर मालूम हुआ?"

"मैं सुन चुकी हूँ कि काशी मे आपको पंडित वृंदावन-विहारी और उनके गुरु के दर्शन हुए थे। उन्हीं महात्मा से वृंदावन महाराज ने शूकरक्षेत्र (सोरों) मे जाकर उपदेश लिया था। पहले पहले वह गृहस्थाश्रम मे रहकर कुछ साधना करते रहे फिर घरवालों से दुःख पाकर उन्होंने दुनिया छोड़ दी। पंडित वृंदावनविहारी जब सोरों गए तो रास्ते मे मैं भी उनके साथ हो गई थी। वहीं उन महात्मा जी ने मुझे उपदेश दिया था लेकिन ऊसर धरती की तरह उनका बीज यों ही चला गया।"

"भला, परंतु वह महात्मा थे कौन?"

"आपके पिता के, नहीं आपके गुरु महाराज! मैंने आपको बहुत कष्ट पहुँचाया है। मैं अब अपने किए पर बहुत पछताती हूँ। आप मेरे अपराधों को क्षमा कर दें तो मेरा छुटकारा हो जाय।"

"अच्छा क्षमा किया" कहकर पंडित प्रियानाथ वहाँ से चल दिए। इसके अनंतर उसकी क्या दशा हुई सो बावनवे प्रकरण मे लिखी हुई है। पंडित जी ने सारा किस्सा "अथ"

से "इति" तक पंडितायिन को सुनाया। इस घटना को सुन-कर मथुरा के विषय मे जो भाव उसके अंत:करण में पैदा हुए उनके लिये कागज रँगने की आवश्यकता नही। हाँ! वरुणा गुफा के महात्मा को अपने पिता जानकर वह उदास भी हुई और प्रसन्न भी हुई। उदास इसलिये कि वहाँ उन्हे न पहचाना और राजी इसलिये कि उसके पिता इतने पहुँचे हुए महात्मा निकले।

प्रकरण—६६

प्यारा सिंगारदान

"पंडित जी ! पंडित जी होत ! अरे पंडित जी ! यहाँ कोई है भी ? किवाड़ा खोलो ! किवाड़ा ! वाह खूब आदमी हैं ! भीतर सुरबुर सुरबुर बाते करते हैं मगर किवाड़ा नहीं खोलते। (किवाड़े मे लात मारकर) ये साले टूटते भी तो नहीं हैं।" एक, दे, तीन, चार लातें मारी और खूब जोर जोर से मारी परंतु किवाड़े खुले नहीं। आनेवाले ने दे चार गालियाँ भी सुनाई परंतु जवाब नहीं मिला। "खोलूँ कैसे ? अनजान आदमी है। उसके सामने जाने मे लाज आती है। सरकार का प्राणायाम चढ रहा है। अभी उतरने में दस मिनट चाहिएँ। निपूते भोला का कहीं पता नहीं। मुआ पड़ा होगा कहीं चंडूखाने मे। रामप्यारी और राधा दोनों ही गायब हैं। अब खुलवाऊँ भी तो किससे ? अरे नन्हा जाकर तूही कुंडी खोल आ !" कहकर प्रियंवदा ने बच्चो को समझाया परंतु उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। यदि जोर से कहकर समझाती है तो ध्यान छूटता है और धमकाती है तो दोनों लड़के रो रोकर घर भर डालेंगे। बस सुरबुराहट इसी बात की थी। अंत मे हारकर खिड़की मे से देवरानी की ओर उसने इशारा किया और वहाँ से कांतानाथ ने आकर

किवाड़ खोले। "क्या मेह बरसता था अथवा डाका पड़ गया जो चिल्ला चिल्लाकर कान की चैलियाँ उड़ा डाली। खोपड़ी खा डाली।" कहते हुए छोटे भैया ने आगंतुक को कुछ डाँटा और "लीजिए साहब! सँभालिए साहब! लाइए रसीद और इनाम!" कहकर उसने एक ट्रंक उनके आगे रख दिया। "हैं ट्रंक? यह ट्रंक कैसा? हमारा नहीं है। देखूँ नाम? हैं। नाम तो भाई साहब का है!" यों कहकर कातानाथ ने उसे सँभालने मे कुछ आनाकानी की, तब पर्दे की ओट मे भौजाई से इशारा पाकर उसे रख लिया और चपरासी को इनाम देकर बिदा किया।

उसके चले जाने के बाद ऊपर ले जाकर ट्रंक खोला गया। देवर भौजाई ने मिलकर उसका एक एक करके सामान सँभाला तो सूची के अनुसार पूरा निकला। बस उधर जरूरी काम के लिये कांतानाथ चल दिए और इधर प्रिया-नाथ का आह्निक समाप्त हुआ। आसन पर से उठकर पति-राम यहाँ आए और तब कुछ मुसकुराकर कहने लगे—

"आपका सामान सब आ गया? राई रत्ती पूरा? काजल टिकुली दुरुस्त?"

"जी हाँ दुरुस्त। आज मानों लाख रुपए पा लिए।"

"अच्छा पा लिए तो मुबारिक हो।"

"हाँ मुबारिक हो! आपको मुबारिक हो क्योंकि इसमे सामान भी तो आपका है।"

"क्या काजल, टिकुली, सिंदूर और रोरी मैं लगाऊँगा ?"

"नहीं आप नहीं ! मैं ! मेरे लिये सौभाग्य-द्रव्य है और आपकी बदौलत है ।"

"अच्छी बात है ।"

"हाँ बात तो अच्छी ही है परंतु कई वर्षों मे क्यों आया?"

"इसलिये नहीं आया कि तुझे गंगातट पर जब लठैतों ने पकड़ा तब तू चिल्लाई नहीं ! तू चिल्लाती तो शायद कोई मदद को भी आ पहुँचता ।"

"हैं ! तो आपकी अदालत ने मुझसे सफाई के जवाब लिए बिना ही सजा दे दी ?"

"नहीं ! हमारी अदालत ने नहीं दी । संयोग की अदालत ने दी ।"

"ठीक । तो इस मुए संयोग ने ही मेरी जबान बंद कर दी । न वे क्लोरोफार्म सुँघाते और न मैं बेहोश होती ।"

"ठीक है ! मुनासिब है ।"

"हाँ मुनासिब तो है परंतु इस ट्रंक के आने में इतनी देरी क्यों हुई ? मथुरा स्टेशन पर पुलिस पर आपका प्रभाव पड़ता देखकर तो मैंने समझा था कि पाँच सात दिनों में आ जायगा । उस समय जब आपने पुलिस को इतना दबदबा दिखलाया था तो फिर भीड़ मे से निकलने के लिये उससे मदद क्यों न ली ? यह तो मैं तब पूछना ही भूल गई थी ।"

ओहो! तब इसके लिये आपको बहुत परिश्रम करना पड़ा, बहुत खर्च करना पड़ा। तब इससे, विशेषकर इस (खोलकर दिखाती हुई) सिंगारदान से और भी प्रेम बढ़ गया।"

"प्रेम बढ़ते बढ़ते कहीं यहाँ तक न बढ़ जावे कि मेरा प्रतिद्वंद्वी खड़ा हो जाय, हिस्सेदार खड़ा हो जाय।"

"जाओ जी (लजाकर) ऐसी बातें न करो। हिस्सेदार बन जाय तो मुए को अभी तोड़ मरोड़कर फेंक दूँ।"

"नहीं नहीं। सरकार नाराज न हूजिए। कुसूर इसका नहीं, मेरा है। जो सजा देनी हो मुझे दीजिए। तावेदार हाजिर है।"

"आपको! (शर्माकर) आपको सजा! आपको सजा यही है कि कृष्णचरित्र का कुछ रहस्य समझाइए। आपने (चौदहवें प्रकरण में) पहले एक बार, शायद मथुरा में, वादा भी किया था।"

"हाँ! उस समय बहुत हिस्सा समझाया था और अध्यात्म सुनाने का वादा भी किया था। जो जो बातें उस समय कही थीं वे तुझे भली प्रकार याद होंगी। उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं। अध्यात्म का नमूना श्रीमद्भागवत के "पुरंजनोपाख्यान" में है। उसमें जैसे सारा किस्सा शरीर पर घटाया गया है वैसे ही विद्वान् सारे ही कृष्णचरित्र को, रामचरित्र को मनुष्य के शरीर पर घटाते हैं। एक महात्मा ने "तुलसीकृत रामायण" की सारी कथा आदमी के

शरीर पर घटा दी है। "प्रबोधचंद्रोदय" भी इसका नमूना है और "महामोहविद्रावण" भी।"

"अच्छा तो थोड़ा सा और स्पष्ट कर दीजिए ताकि इन पुस्तकों से टटोलने मे सुगमता रहे।"

"आनंद तो उन ग्रंथो को पढ़ने ही से आवेगा, और उनके बताए रास्ते पर चलने से समझ मे भी ठीक आ सकता है। हाँ थोड़े मे यह है कि उनमें अहंकार रावण और काम क्रोधादिक उसके राक्षस हैं और जीवात्मा हैं भगवान् रामचंद्र। बस उन्होंने सद्‌गुणों की सेना की सहायता से अहंकारादि को विजय किया है।"

"तब क्यों जी! क्या भागवत और रामायण की कथा मिथ्या है? जब ऐसा ऐसा अध्यात्म ही भरा है तब उसे व्यास जी और वाल्मीकि जी की कल्पना समझना चाहिए।"

"नहीं! ऐसा कदापि नहीं! अध्यात्म भी सत्य है और कथा भी सत्य है। जैसा अधिकारी उसके लिये वैसा ही मसाला है। "पुरंजनोपाख्यान" लिखकर व्यास जी ने पंडितों को केवल नमूना दिखला दिया है, इसलिये कि पंडित यदि थोड़ी सी मेहनत करें तो सारे भागवत का रहस्य समझ सकते हैं।"

"अच्छा तो अब मैं समझ गई। परंतु मुझे तो आपका अध्यात्म कुछ नीरस सा जान पड़ा।"

"बेशक नीरस सा ही है। छहों रसों को गड्डमड्ड करके खा जानेवाला जो महात्मा वेदांती और संसारत्यागी विद्वान् है उसके लिये भले ही सरस हो किंतु हम भक्त जनों के लिये नीरस!"

"हाँ सत्य है। सचमुच सरस तो हरिकथा है।"

"बेशक!"

जिस समय दंपती की इस तरह बातें हो रही थीं कमला और इंदिरा, दोनों ही पास बैठे बैठे खेल रहे थे। कभी अपना खेल बंद करके दंपती की विनोद भरी बातें खूब ध्यान से सुनते, कभी इन्हे मुसकुराते हुए देखकर खूब खिलखिलाकर हँसते और कभी उस सिंगारदान पर अपना अपना दावा कायम करके "य मेरा!" "य मेरा!" कहकर आपस मे झगड़ते, नोचते और गुश्तमगुश्ता हो जाते थे। इस खैंचतान मे काजल की डिबिया खुल जाने से दोनों के हाथ काले हो गए, दोनों ने अपने मुँह पर सिंदूर पोत डाला और टिकुलियों की डिबिया खुलकर वे सब बिखर गईं। बस अब आपस मे आईने पर झगड़ा हुआ। एक ने दूसरे के हाथ से छीन लिया और दूसरा पहले के हाथ से छीनकर ले भागा। इस पर एक रो रोकर खूब चिल्लपो मचाने लगा। दंपती अपने ध्यान मे ऐसे मस्त थे कि बालकों की हरकत पर न तो उनकी नजर गई और न कान। अंत में पंडित जी ने कमलानाथ

को आईना उठाकर भागते और इंदिरानाथ को रोते देखा। तब वह हँसकर कहने लगे—

"लो आपकी बखशिश की क्या गत बन गई।"

"क्या चिंता है ? भगवान् बखशिशे देनेवाले को सलामत रखे। ऐसी ऐसी कई बखशिशें आ जायँगी।"

इस तरह विनोद की बातें करते करते प्रियंवदा ने अपनी चीजे सम्हालीं और लड़कों को फुसलाया।

प्रकरण—७०

उपसंहार

जब से "राधानाथ रमानाथ" के नाम से अजमेर में दूकान खुली पंडित जी का आधा समय वहाँ और आधा यहाँ बीतता है। घर में दो तीन सवारियाँ मौजूद हैं। नौकरी को वह तिलांजलि दे ही चुके। बस जब जी मे आया घर और जब इच्छा हुई अजमेर। यहाँ जमींदारी को सँभालना, गोशाला की देखभाल, कपड़े, लोई और फेल्ट के कारखाने का निरीक्षण और खेती के कामों पर नजर और वहाँ दूकान की सँभाल। "आई थी मैं हरि भजन, ओटन लगी कपास।" उन्होने शायद "डाक विभाग और कोर्ट आफ् वार्ड्स" की नौकरियाँ इसलिये छोड़ दी थीं कि उन्हे भगवदाराधन के लिये भर पेट समय मिलेगा परतु जो कर्तव्य का दास है अथवा जो अपना जीवन ही काम करने के लिये मानता है उसे अवकाश कहाँ? "अवकाश" पंडित जी के कोश मे नही। काम की भरमार होने पर भी वह जब काम समय के विभाग करके करते हैं तब उनके घबड़ाने का वास्ता क्या? इतना परिश्रम, ऐसी ऐसी झंझटें होने पर भी वह भगवदाराधन मे, ब्राह्मणोचित कर्म करने मे और शास्त्रचर्चा मे मस्त रहते हैं। उनका वही आह्निक, उनका वही भगवद्भक्ति मे आत्मविसर्जन, तल्लीनता

घटी नही है। घटने के बदले बढ़े तो जुदी बात है। पंडित जी जितना परिश्रम करते हैं उतना, उनसे भी अधिक कांतानाथ करते हैं। काम काज का सारा बोझा उसी के सिर है। "स्याह और सफेद" जो कुछ करे उसे अधिकार है। सब काम करनेवाला वह और निरीक्षक पंडित जी। गलतियों को सुधरवाना, काम को दृढ़ पाए पर डालना, नई नई बातें सुझाना समझाना और काम मे परिणत करना उनका काम और उनकी आज्ञा के अनुसार वर्तना छोटे भैया का। यदि कांतानाथ के हाथ से कुछ गलती हो जावे तो वह उसे फटकारते नहीं हैं, उस समय उससे कुछ कहते तक नही हैं, और जब वह स्वयं रिपोर्ट करे तब—"होगा जी! काम करनेवाले के हाथ से चूक भी होती ही आई है।" कहकर उसको संतुष्ट कर देते हैं और फिर अवसर निकालकर समझाते हैं। बस वह भी इनका "हुक्मी बंदा" है। परिणाम यह कि दोनों भाइयों का प्रेम राम भरत के अलौकिक प्रेम की याद दिलाता है।

इस तरह जब पंडित बंधुओं का परस्पर असाधारण प्रेम है तब दोनों देवरानी जिठानी सगी माँ-जाई बहनों की तरह मिलकर रहती हैं। अक्सर देवरानी जिठानी मे, सास बहू मे ननद भौजाई मे, मा बेटी मे और बहन बहन मे परस्पर लड़ाई होती देखी है। यदि स्वार्थ के विरोध मे झगड़ा हो तो जुदी बात है किंतु नहीं—अविद्या से, बिना बात ही, हलकी हलकी बातों पर आपस मे लड़कर वे एक दूसरी की जानी दुश्मन बन

जाती हैं। और हिंदुओं का यही कौटुंबिक कलह हिंदू समाज की दृढ़ भित्ति को कुदाले मार मारकर ढाह रहा है किंतु अब पंडित बंधुओं के संयुक्त कुटुंब मे कलह कसम खाने के लिये भी नही। रमणी जाति मे परस्पर की कलह होने के जो कारण हैं वे जब इनके घर में प्रवेश तक नहीं कर सकते तब कलह हो भी तो क्यों हो? दोनों नारियाँ पति-सेवा मे दत्तचित्त हैं। स्वप्न मे भी पति की आज्ञा का, उनकी इच्छा का उल्लंघन करना वे जब घोर पाप समझती हैं तब उनके घर मे अवश्य ही आनंद विराजमान है। सचमुच ही प्रियंवदा और अब उसकी शिक्षा से, उसकी देखा देखी सुखदा भी आदर्श बन गई है। भगवान् ने जैसी नीयत दी है वैसी बरकत भी दी है। इनके घर का हर एक काम धर्म के अनुकूल होता है। धर्म-विरुद्ध लाख रुपया भी इनके लिये विष है, बुरी चीज है, स्पर्श करने योग्य नहीं। जिनका सिद्धांत ही यह है—

"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत्॥"

फिर इनके घर मे सुख का निवास क्यो न हो? ईश-कृपा से इस समय सफलता इनकी चेरी और सुख इनका दास है। सुख की शोभा भी इसी मे है कि वह ऐसे धर्मशील की चरण-सेवा मे प्रवृत्त हो। केवल कल्पना के मनोराज्य मे आना पाई से हिसाब देने की अथवा "हाथी के दाँत दिखाने के और और खाने के और" की तरह झूठ मूठ रिपोर्ट प्रकाशित करने

की इन्हें आवश्यकता नहीं। अतिथिसत्कार के लिये, साधु महात्माओं की सेवा करने के लिये जैसे इनका दरबार खुला हुआ है वैसे इनके अनेक लोकहित के कामो को, व्यापार धंधों को देखने का जनसाधारण को अधिकार है। जिस किसी की इच्छा हो इनके यहाँ आकर बारीकी से इनका काम देख सकता है और इनके अनुभव से लाभ उठा सकता है अथवा इनके कामो की नकल कर सकता है। यों इनके यहाँ दोनों बातो मे छूट है। रोक टोक का नाम नहीं। देशी कारीगरी और देशी व्यापार की उन्नति के लिये इनकी राय यह है—

"सचाई का बर्ताव होना चाहिए। झूठ बोलकर अनाप सनाप नफा लेने से कम नफे मे एक ही भाव पर चीज बेचना जितना आवश्यक है उतना और कुछ नहीं। केवल लेकचर-बाजी से काम नहो चलेगा। जो कुछ करना हो उसे करके दिखला देना चाहिए। मैं उसे बहुत ही नीच समझता हूँ जो व्याख्यान देकर गला फाड़ने मे बहादुर है, जो औरों के विलायती कपड़े उतरवाकर जला देने मे शूर है किंतु स्वयं बर्ताव के नाम पर बिंदी। औरों को भड़काकर उपद्रव खड़ा करना और यों हाकिमों को नाराज करना अच्छा नहीं। जो शांति-पूर्वक दृढ़प्रतिज्ञ होकर काम करनेवाला है उसका अनायास अनुकरण होने लगता है। बस खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। यही देश की उन्नति का मूल सूत्र है। कानफरेंसो की धूम, लेक्चरों का गर्जन और आडंबर का ठाठ

करके आदि अब तक इतना रुपया, समय और बुद्धि नष्ट न की जाती अथवा अब भी न की जाय तो देश का सौभाग्य है।"

अतिथि-सेवा के लिये भी यह घर आदर्श है, सरनाम है और असाधारण है। "श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां, स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः। यस्यार्थिनो वा शरणागता वा नाशाविभंगा विमुखाः प्रयांति।" का आप उदाहरण हैं। अतिथिसत्कार के लिये यदि परिश्रम उठाना पड़े, हानि भी क्यो न हो और द्रव्य चाहे जितना खर्च हो जाय यह मुख नहीं मोड़ते हैं। भूले भटके साधु गृहस्थों को सुपथ पर लगाना और ऐसे अच्छे अच्छे नमूने पैदा करना इनका काम है।

सनातनधर्म की उन्नति और सामाजिक दुर्दशा का सुधार करने के विषय मे इनके जो ख्याल हैं वे इस उपन्यास मे समय समय पर, स्थान स्थान मे कार्य रूप पर व्यक्त किए गए हैं। आवश्यक आवश्यक विषयों मे से शायद निकले तो ऐसे विरले ही निकल सकते हैं जिनके लिये इन्होंने कुछ नही किया अथवा कहा न हो। हाँ! समष्टि रूप पर इनकी राय यह है—

"हिंदू-धर्म, हिंदू-समाज संसार के यावत् धर्मों का मूल है। दुनिया में जितने धर्म हैं उन सबके सबही अच्छे सिद्धांत, मूल तत्त्व इसमे पहले से विद्यमान हैं। केवल देखनेवाला चाहिए। "कौवा कान ले गया" की कहावत की तरह कौवे के पीछे मत दौड़ो। पहले अपना कान सँभाल लो। तुम्हारे

यहाँ सब कुछ है और जो कुछ है वह लाखों वर्षों के अनुभव से अनुकूल सिद्ध हो चुका है। परायों की नकल करके अपने ही हाथों से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के बदले प्राचीनों के सुमार्ग पर चलने ही मे तुम्हारा कल्याण है। जहाँ कहीं थोड़ा बहुत अंतर पड़कर समय के प्रतिकूल दिखलाई दे वहाँ शास्त्र के अनुसार, वृद्धो की सम्मति से ठीक कर लो। परायों की नकल करना अच्छा नहीं है। अन्य देशों की सभ्यता मे जो जो तुम्हे चमकदार दिखलाई देता है उस सबको ही सोना समझना तुम्हारी भूल है। परदेशियों के ऐसे सद्गुणों की नकल करो जिनसे तुम्हारे भारतवासीपन पर, हिंदूपन पर आघात न पहुँचे। पुराने और नए ख्यालों की दलादली कदापि न बढ़ने दो। जिन बातों के विषय मे पुराने और नए का मत-भेद हो उन्हे मत छेड़ो। उनके लिये पहले शास्त्रों का मनन करो किंतु जो निर्विवाद हो उनमे एकमत होना, परस्पर के मत-भेद को निकालकर पुराने और नए समाज यदि एक सूत्र मे बँध जायँ, अनेक जातीय सभाएँ स्वतंत्र रूप से चलने पर भी उनका केंद्र एक हो जाय और एक ही उद्देश्य को लेकर वे सब कार्य करे तो उन्नति सहज मे हो सकती है। धर्मसभा और आर्यसमाज, सुधारक और उद्धारक का अधिक समय आपस के लड़ाई झगड़ों मे, एक दूसरे को नीचा दिखाने मे जाता है। ब्रिटिश सम्राज्य की छत्र-छाया मे, उन्नति के सुअवसर पर एकता बढ़ने के बदले फूट फैलती

और इस समय की इतिहासप्रसिद्ध शांति का दुरुपयोग होता है, उस पर कुठाराघात है।"

राजनैतिक कामो के विषय मे वह प्रायः उदासीन से हैं। उनका मत है कि "जब इस विषय का आंदोलन करने मे सैकड़ो बड़े बड़े आदमी दत्तचित्त हैं तब मैं अपना सिर क्यो खपाऊँ?" किंतु जब उनसे इस विषय मे कोई कुछ जिक्र छेड़ देता है तब वह कहा करते हैं—

"जिन बातों को देने का सरकार ने वादा कर लिया है अथवा आप जिन पर अपना स्वत्व समझते हैं उन्हे सरकार से माँगे। जब माता पिता भी बेटे बेटी को रोने से रोटी देते हैं तब राजा से माँगने मे कोई बुराई नहीं है। तुम ज्यों ज्यों माँगते जाते हो त्यों त्यो धीरे धीरे वह देती भी जाती है। किंतु काम वही करो जिससे तुम्हारे "नराणां च नराधिपः" इस भगवद्वाक्य मे बट्टा न लगे। भगवान् के इस वचन से जब राजा ईश्वर का स्वरूप है तब उसकी गवर्मेंट शरीर न होने पर भी उसका शरीर है। इसलिये नियमबद्ध आंदोलन करना आवश्यक और अच्छा है किंतु जो मुठमर्दी करनेवाले हैं, जो उपद्रव खड़े करके डरानेवाले हैं अथवा जो अपने मिथ्या स्वार्थ के लिये औरो के प्राण लेने पर उतारू होते हैं उनके बराबर दुनिया मे कोई नीच नहीं, पामर नहीं! वे राजा के कट्टर दुश्मन हैं। सचमुच देशद्रोही हैं। वे स्वयं अपनी नाक कटाकर औरो का अपशकुन करते हैं। उनसे अवश्य घृणा

करनी चाहिए। जो काम स्वयं करने के हैं उन्हे करके अपने आपको औरों के लिये नमूना बनाओ। बस सीधा मार्ग यही है।"

संतानो का भी पंडित जो को सुख कम नहीं है। कमलानाथ और इंदिरानाथ गत प्रकरणो मे प्रकाशित घर की शिक्षा समाप्त करके हिंदू यूनिवर्सिटी मे उच्च शिक्षा पा रहे हैं। इनके घर के अध्ययन का ढंग देखकर विश्वविद्यालय के कर्ता धर्ताओं ने उसे पसंद किया है और औरो को इनका अनुकरण करने की सलाह दी जाती है। लड़के दोनो चतुर हैं, बुद्धिमान् है, सुशील हैं, परिश्रमी हैं और सदाचारी हैं। इनके अतिरिक्त दोनों के और भी कई लड़के लड़कियाँ हैं। कई एक का विवाह होकर बहुओं का भी आगमन हो गया है। बस इनका घर यो फलती बेल है, लहलहाती लता है।

इस यात्रा मे इन्होंने जहाँ जहाँ दीनशालाएँ खोलने की, पंडो को शिक्षा दिलाकर सुधारने की, तीर्थों के अनेक कुकर्म नष्ट होकर भलाई का प्रचार होने की, गोरक्षा, कुष्ठाश्रम और जीवदया-विस्तार की सलाह दी है वहाँ वहाँ सफलता होने की खबर पाकर इन्हे आनद होता है, होना ही चाहिए। वह स्वयं किसी न किसी प्रकार से अवकाश निकालकर ऐसे ऐसे अनेक लोकहितकारी कामो में योग देते हैं, चंदा देते हैं और काम करने के लिये आगे बढ़ते हैं। जब इन्हे परमेश्वर की अनन्य भक्ति का, अपने तप का अपने "विल पावर" का

और अपने सदाचार का बल है तब उनके कथन का, उनके कामो का औरों पर अच्छा असर पड़ता हो तो आश्चर्य क्या? क्योकि यह उन लोगों मे से नहीं हैं जो—

"परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्म्मे स्वीयमनुष्ठाने कस्यचित्सुमहात्मनः॥"

इस लोकोक्ति मे "पूर्वार्द्ध" के अनुयायी हैं। औरो को वही झुका सकता है जो पहले स्वयं झुकता है। दुनिया ऐसे ही सज्जन के हाथ से झुकने को तैयार है जो करके दिखा देता है। संसार के इतिहास मे उसका ही आदर है, वही पूजनीय देवता है। हमारे अवतार इसी लिये ईश्वर हैं और प्राचीन ऋषि मुनि देवता। ऐसे महात्माओं के एक दो नहीं हजारो ही चित्र हमारे पुराणो मे हैं, इतिहासों मे हैं और जो इनमे नहीं हैं वे परंपरा से धरोहर मे प्राप्त जन समुदाय के हृदय-मंदिर मे हैं। केवल उनसे लाभ उठानेवाला चाहिए, शक्ति चाहिए और वह पंडित जी की तरह भगवान के चरण कमलो मे सच्ची लौ लग जाने से प्राप्त हो सकती है। पंडित जी का चरित्र वास्तव मे हिंदू-समाज का आदर्श है। लेखक की कल्पना ने जैसा गढा है वैसे अनेक पंडित जी के पैदा होने की आवश्यकता है। पंडित जी अपने मन में—

"निशिवासर वस्तु विचारहि के मुख साँच हिए करुणा धन है।
अघ निग्रह सग्रह धर्म कथानि, परिग्रह साधुन को गन है॥

कहि केशव भीतर जोग जगै, अति बाहिर भोगिन सों तन है।
मन हाथ सदा जिनके तिनको, वन ही घर है घर ही बन है॥"

इसके अनुयायी हैं—

"अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिंतयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥"

यही उनका मोटो है। लेखक के मनोराज्य में ऐसे ही पंडित जी ने निवास किया है और ऐसे ही हिंदू को "आदर्श हिंदू" की पदवी प्रदान होती है।